तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता l
शिव स्वरुप शिवकार, नमहू त्रियोग सम्हारिकें।।१।।

अन्वयार्थ - (वीतराग विज्ञानता) राग द्वेष रहित भैद -विज्ञान अर्थात केवलज्ञान (तीन भुवन में सार) तीनों लोकों में श्रेष्ठम (उत्तम) (शिव स्वरुप शिवकार) आनंन्द स्वरुप मोक्षदायक है (नमहुॅ त्रियोग सम्हारिकैं) उसे मैं अपने तीनों योगों को सम्हाल कर नमस्कार करता हूं

भावार्थ - ऊर्ध्व, मध्य एवं अधो इन तीनों लोकों में अष्टादश दोषों से रहित भगवान का केवलज्ञान उत्तम है, आनंन्द स्वरुप है तथा मोक्ष सुख को देने वाला है, अत: पं. प्रवर दौलतराम जी ने अपने मन, वचन एवं काया तीनों योगों को एकाग्र कर वीतराग विज्ञान को नमस्कार किया।

प्रश्न १. तीन लोक किसे कहते हैं ?
उत्तर - अधो, मध्य एवं ऊर्ध्व लोक को तीन लोक कहते है।

प्रश्न २. त्रिलोक का निर्माता कौन है ?
उत्तर - त्रिलोक स्वयं सिध्द है, इसे बनाने वाला विश्व में कोई विधाता नहीं है।

प्रश्न ३. त्रिलोक किसके आधार से हैं ?
उत्तर - यथार्थ में लोक स्वचतुष्टय के आधार पर अवस्थित है परन्तू आधारधेय की अपेक्षा तीन वातवलय (तनुवातवलय, घनोदधिवातवलय)
एवं आकाश के आधार पर अवस्थित है।

प्रश्न ४. तीन भुवन में श्रेष्ठ क्या है ?
उत्तर - तीन भुवन में वीतराग विज्ञान ही श्रेष्ठ वस्तु है।

प्रश्न ५. वीतराग विज्ञान किसे कहते है?
ऐसे केवलज्ञान को वीतराग विज्ञान कहते है।

प्रश्न ६. वीतराग विज्ञान की क्या विशेषता है ?
उत्तर - वीतराग विज्ञान तीनों लोकों मे श्रेष्ठतम है, आनन्द स्वरुप है और सच्चे सुख , मोक्ष स्वरुप को प्रकट कराने वाला है।

प्रश्न ७. शिव किसे कहते है ?
उत्तर - अक्षय, सुख, परमानन्द या कर्मरहित मोक्ष अवस्था को शिव कहते है।

प्रश्न ८. दौलतराम जी ने वीतराग विज्ञान को किस प्रकार नमस्कार किया ?
उत्तर - छहढाल के प्रारम्भ में श्री पं. प्रवर दौलतराम जी ने वीतराग विज्ञान को मन, वचन एवं काय तीनों योगों को एकाग्र कर मंगलचरण रुप से नमस्कार किया है।

प्रश्न ९. मंगलचरण सर्वप्रथम क्यों किया जाता है ?
उत्तर - शुभ कार्ये में किसी प्रकार का विघ्न न आए, ग्रन्थ रचनादि महान कार्यो में पूर्ण सफलता प्राप्त हो। आगमानुसार तथा महापुरुषों के प्रति बहुमान व्यक्त करने के लिये प्रत्येक शुभ कार्य के शुभारम्भ में नियम से मंगलाचरण किया जाता है।

प्रश्न १०. मंगलाचरण में श्री पं. दौलतरामजी ने किन्हीं महापुरुषों का नाम क्यों नहीं लिया।

उत्तर - महापूरुष अनन्त हो चुके है, हो रहे हैं और होते रहेंगे, यह सभी महापुरुष वीतराग विज्ञान स्वरुप ही होते है, अत: वीतराग विज्ञान को नमस्कार करने से सभी महापुरुषों को नमस्कार हो जाता है।

प्रश्न ११. क्या हमें भी मंगलाचरण करना चाहिये ?
उत्तर - हॉ, हम सभी को अपने प्रत्येक शुभ कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व निर्विघ्न सम्पन्नता एवं शिष्टाचार हेतू मंगलाचरण अवश्य ही करना चाहिये।

संसारी जीवों की भावना और गुरु उपदेश

जे त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणाधार।। २।।

अन्वयार्थ - (जे त्रिभूवन में जीव अनंत) जो तीनों लोकों में अनन्त प्राणी हैं, (सुख चाहें दुख तैं भयवन्त) वे सभी प्राणी निरन्तर सुख चाहते हैं और दुख से भयभीत रहते हैं। (तातैं करुणाधार गुरु) इसलिये दयामूर्ति आचार्य, (दुखकारी सुखकार सीख कहैं) दु:खों की परिसमाप्ति एवं सुख प्राप्ती का उपदेश देते हैं।

भावार्थ - इस तीन खण्ड रुप चौदह राजू प्रमाण उत्तुंग पुरुषाकार लोक में अनन्तानन्त प्राणी हैं, वह सभी प्राणी निरन्तर सुख की आकांक्षा करते है, दुख को स्वप्न में भी नहीं चाहते परन्तू संसार तो दुख स्वरुप ही है, यहाँ पर किसी की मनोभावना पुर्ण नहीं हो पाती। स्वपर हितैषी आचार्य यह संसार दुख का कारण है यह अच्छी तरह से जानते हैं और इस दुख से मुक्ति किस प्रकार मिलेगी इस उपाय को भी अच्छी तरह जानते हैं। गुरु करुणामय होते है, दुखी प्राणियों को देखकर उनका ह्दय द्रवीभूत हो उठता है और वे उन्हे ऐसा उपदेश देते है जो दुखो की परिसमाप्ती एव सुख की अनुभूति कराता है अत: सुखानुभूति की आकांक्षा करनेवाले समस्त प्राणियों को ऐसे हितोपदेशो गुरुओंके उपदेश का अनुसरण करना चाहिये।

प्रश्न१. त्रिभुवन किसे कहते है ?
उत्तर - अधो, मध्य एवं ऊर्ध्वलोक को त्रिभुवन कहते है।

प्रश्न२. जीव किसे कहते है?
उत्तर - जो ज्ञान दर्शन चेतना से सहित है और इन्द्रियादि प्राणी से जीता है उसे जीव कहते हैं।

प्रश्न ३. तीनों लोकों में जीव कितने है?
उत्तर - तीनों लोकों में अनन्त जीव हैं।

प्रश्न ४. अनन्त किसे कहते हैं ?
उत्तर - जिस वस्तू का प्रमाण छअस्थो के ज्ञान में न आये या जिसका अन्त न हो उसे अनन्त कहते है।

प्रश्न ५. विश्व के प्राणी क्या चाहते है ?
उत्तर - अखिल विश्व के प्राणी सुख चाहते है और दुख से प्रतिक्षण भयभीत रहते है।

प्रश्न ६. विश्व के प्राणियों के लिये गुरु ओं ने क्या उपदेश दिया ?
उत्तर - गुरुओं ने विश्व के दुखी प्राणियों को दुख से मुक्ति एवं सच्चे सुख की प्राप्ती हेतू धर्मोपदेश दिया है।

प्रश्न ७. क्या दिगम्बर मुनिराजों के करुणा होती है ?
उत्तर - हाँ दिगम्बर मुनिराजों के ह्दय में करुणा होती है। जब वे विश्व के प्राणियों को मिथ्यादर्शन, अज्ञान एवं कुचारित्र की अग्नि में जलते हुए देखते है, तब करुणा रुप सहज भाव से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र रुप निर्मल शीतल जल भव्य प्राणियों पर उडेंल देते हैं।

प्रश्न ८. विश्व के प्राणी दु: ख से क्यों डरते और सुख क्यों चाहते हैं?
उत्तर - दु:ख जीव का स्वभाव नहीं है इसलिये दु:ख से सभी प्राणी भयभीत रहते है, और सुख प्राणी का सहज स्वभाव है, इसलिये सुख प्राप्ती का स्वाभाविक प्रयत्न प्रतिक्षण सहज रुप में होता है।

गुरु उपदेश सुनने की आज्ञा तथा संसार परिभ्रमण का कारण

ताहि सुनो भवि मन थिर आन जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।।

अन्वयार्थ - (भवि जो अपनो कल्याण चाहो) हे भव्य आत्माओ यदि आप अपना कल्याण चाहते हो तो, (मन स्थिर आन ताहि सुनो)
अपने मन को एकाग्र करके जो गुरुओं ने धर्मोपदेश दिया है, उसे सुनो, (अनादि मोहमद पियो) अनादि काल से यह जीव मोहरुपी मदिरा को पीकर (आपको भूल वादि भरमत) अपने यथार्थ स्वरुप को भूलकर , व्यर्थ में ही संसार सागर में भ्रमण कर रहा है।

भावार्थ - अनादि काल से ही संसार में भ्रमण करने वाले सभी प्राणी मोहरुपी महामदिरा का पान करते आ रहे हैं। जिस प्रकार शराब पीकर मनुष्य पागलवत होकर अपने आपको भूल जाते है उसी प्रकार मोह के नशे में यह प्राणी अपने यथार्थ स्वभाव को भूलकर संसार सागर में व्यर्थ ही गोते खा रहे हैं।

भव सागर से तिरने का जो एक मात्र उपाय हितोपदेशी गुरुओ ने अपने उपदेश में बताया है यदि स्वात्म कल्याण की अभिरुचि है तो उसे अपना मन एकाग्र कर सुनो।

प्रश्न १. स्वात्म हितैषी जीवी को क्या करना चाहिये ?
उत्तर - स्वात्म हितैषी जीवी को अपने मन को स्थिर करके आन्तरिक अभिरुचि से गुरुओ के उपदेश करे जीवन में उतारना चाहिये।

प्रश्न २. भव्य किसे कहते हैं ?
उत्तर - मोक्ष सुख को प्राप्त करने की जिसमें योग्यता हो, उसे भव्य कहते है।

प्रश्न ३. यह जीव अनादि काल से मोह रुपी मंदिर को क्यों पीता आ रहा है?
उत्तर - स्वयं अपनी भूल के कारण यह जीव अनादिकाल से मोह रुपी मंदिर को रुचि से पीता आ रहा है।

प्रश्न ४. मोह किसे कहते है ?
उत्तर - पर वस्तू में अपनत्व बुध्दी को मोह कहते है।

प्रश्न ५. अपने स्वरुप को भूलकर जीव ने क्या किया ?
उत्तर - अपने स्वरुप को भूलकर यह जीव संसार रुपी वन में अनादिकाल से भ्रमण करता आ रहा है।

प्रश्न ६. कल्याण किसे कहते है ?
उत्तर - अपने शुध्द स्वरुप की प्राप्ती को ही कल्याण कहते है।

ग्रन्य की प्रमाणित एवं निगोद के दु:ख

तास भ्रमणकी है बहुकथा, पै कछु कही मुनी यथा।
काल अनंत निगोद मंझार, वात्यो एकेंन्द्रिय तन धार।।४।।

अन्वयार्थ - (तास भ्रमण की कथा बहू है) इस संसार में भ्रमण करने का बहुत लम्बा वृतान्त है (पै यथा मुंनि कही) फिर भी जिस प्रकार आचार्यो ने विवेचन किया है, उसी प्रकार (कछु कहूँ) कुछ थोडा सा विवेचन करता हूँ (एकेद्रिय तन

धार अनंत काल निगोद मंझार वीत्यो) एकेंन्द्रिय शरीर को धारण कर इस जीव का अनन्तकाल निगोद के अन्दर व्यतीत हुआ है।

भा वार्थ - इस जीव की संसार में परिभ्रमणा करने की बहूत लम्बी कहानी है,फिरभी पूर्वाचार्योने आगम में जैसा विवेचन किया है उसी के अनुसार मैं भी कुछ विवेचन करता हूँ। यह जीव अनादिकाल से इस संसार में परिभ्रमण कर रहा है, जिसमें अनन्तकाल निगोद पर्याय में एकेन्द्रिय शरीर धारण करके ही व्यतीत किया है। निगोद - जिस शरीर के अनेक स्वामी हो ऐसी साधारण वनस्पती काय में सुई की नोंक का भी हजारवॉ भाग सूक्ष्म निगोदिया शरीर होता है। एक नि गोद शरीर में असंख्यात स्कन्ध पाये जाते है। प्रत्येक स्कन्ध में असंख्य अंडर होते है, प्रत्येक अंडर में असंख्य आवास बने है, प्रत्येक आवास में असंख्य पुलवि है और प्रत्येक पुलिव में असंख्य शरीर निगोद जीवों के है, इन निगोद जीवों के प्रत्येक शरीर में अनन्तानन्त निगोद जीव एकन्द्रिय साधारण वनस्पती कायिक पाये जाते है। इस प्रकार प्रत्येक स्कन्ध में अनंन्तानंद निगोदिया जीव रहते है।

प्रश्न १. संसार परिभ्रमण की कितनी लम्बी कहानी है ?
उत्तर - संसार परिभ्रमण की कहानी कल्पनातीत लम्बी है, करोडों जिव्हीओं से भी उसकी विवेचना नहीं की जा सकती है।

प्रश्न २. श्री पं.प्रवर दौलतराम जी ने क्या प्रतिज्ञा की ?
उत्तर - श्री पं.प्रवर दौलतराम जी ने यह प्रतिज्ञा की है कि इस जीव के संसार परिभ्रमण की बहुत लम्बी कहानी है, उसमें से आगमानुसार जैसी विवेचना पूवााचार्या ने की है, उसी के आधार से कुछ, संक्षेप में विवेचन मैं भी करुंगा।

प्रश्न ३. जीव का अधिक समय कहॉ पर व्यतीत हुआ है ?
उत्तर - जीव का अधिक समय निगोद पर्याय में व्यतीत हुआ है।

प्रश्न ४. निगोद कहॉ पर है ?
उत्तर - निगोद सप्तम नरक के नीचे है।

प्रश्न ५. क्या सभी निगोदिया जीव सप्तम नरक के नीचे रहते है ?
उत्तर - यद्यपि निगोदिया जी व तीनों लाकों में सर्वत्र रहते है, किन्तू सप्तम नरक के नीचे निगोद का विशेष स्थान है।

प्रश्न ६. निगोद किसे कहते है ?
उत्तर - जो निगोद रुप से अनन्त जीवों को अपने में स्थान दे वह निगोद है।

प्रश्न ७.क्या निगोद में एकेन्द्रिय जीव ही होते है ?
उत्तर - हॉ , साधारणतया निगोद में एकेंन्दिय साधारण वनस्पति कायिक जीव ही होते है, विशेषतया स्थावर जीवों का भी अस्तित्व पाया जा ता है।

निगोद के दु:ख और स्थावर पर्याय

एक श्वास में अठ दस बार, जन्म्यो मरयो भरयो दु:ख भार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।। ५।।

अन्वयार्थ - निगोद पर्याय में यह जीव (एक श्वांस में अठ दस वार जन्म्यो मरयो) एक श्वांस में अठारह बार मरा और जन्मा, (दु:ख भार भर्यो) (तथा) दुखरुप भार को वहन किया (निकासी भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पती थयो) उस निगोद पर्याय से निकलकर यह जीव पृथ्वी ,जल अग्नि, वायू एवं प्रत्येक वनस्पति कायिक हुआ।

भावार्थ - नागोद पर्याय में इस जीव ने एक श्वास में अठारह बार जन्म मरण करके अनन्त दु:खो को सहन किया और निगोद से निकलकर एकेन्द्रिय पर्याय के पंच स्थावरों अर्थातृ पृथ्वी ,जल, अग्नि,वायु एवं प्रत्येक वनस्पती कायिक जीवों में उत्पन्न होकर अकथनिय भयंकर दुखों को सहन किया है।

प्रश्न १. एक श्वास में अठराह बार जन्म - मरण। जीव ने कहॉ पर किया ?
उत्तर - निगोद पर्याय में।

प्रश्न २. निगोद पर्याय में जीव ने किस प्रकार के दु:ख सहन किये ?
उत्तर - निगोद पर्याय में यह जीव वचनातीत दु:खो को सहन करता आया है। नरकों के दु:खों से भी भयानक दु:ख निगोद पर्याय में सहन करने पडे हैं, जैसे किसी व्यक्ति के नाक मुख सभी बन्द करके एक गेंद की तरह गोल रुप में रस्सी से कस दिया जाये और फिर गेंद की तरह इधर से उधर टोला लगाया जाये तो उस व्यक्ति को कितना कष्ट होगा ? अनुमान लगायें, इससे भी अधिक दु:ख निगोद पर्याय में सभी जीवों ने सहन किये है।

प्र. ३ श्वास किसे कहते है ?
उत्तर - स्वस्थ आदमी की नाडी के धडकन काल को श्वास कहते है।

प्र.४. निगोद से निकलकर जीव ने किस पर्याय को धारण किया ?
उत्तर - निगोद से निकलकर जीव ने पांच स्थावर पर्यायों को धारण किया।
प्र.५. स्थावर जीव किसे कहते है ?
उत्तर - स्थावर नाम कर्म के उदय से एकेन्द्रिय की पांच प्रकार की (पृथ्वी , अप , तेज, वायू, वनस्पति) पर्याय में उत्पन्न होने वाले जीव को स्थावर कहते है।

प्र.६. क्या निगोद से निकलकर स्थावर पर्यायमें ही उत्पन्न होना पडता है ?
उत्तर - नहीं ऐसा कोई नियम नहीं है क्योंकि निगोद से निकलकर मनुष्य पर्याय तक को भी धारण किया जा सकता है। जैसे-भरत चक्रवर्ती के ९२३ पुत्रों ने निगोद से मनुष्य पर्याय प्राप्त की और मोक्ष पधारे। एक मत यह भी है कि निगोद से निकलकर द्वीन्द्रिय (गिजाई) हुये उसके अनन्तर मनुष्य होकर मोक्ष पधारे।

त्रस पर्याय की दुर्लभता और दु:ख

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी , त्यों पर्याय लही त्रस तणी।
लट-पिपील अलि आदि शरीर, धरधर मरृयो सही बहुपीर।। ६।।

अन्वयार्थ - (ज्यों चिन्तामणी दुर्लभ लहि) जिस प्रकार चिन्तामणी रत्न की प्राप्ती बडी दुर्लभता से होती है, (ज्यों त्रसतणी पर्याय लहि) उसाी प्रकार त्रस पर्याय की प्राप्ती हुई है, (लट पिपील अलि आदि शरीर धर-धर मरयो सही बहुपीर) लट, चिउंटी, भौरा आदि अनेकों प्रकार के शरीर धारण कर दुखों को सहन किया।

भावार्थ - लोक में जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न, जिससे मन की सभी इच्छित वस्तूए सुलभ हो जाती है, उस रत्न का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार स्थावर पर्याय से त्रस पर्याय की प्राप्ति बडी कठिनता से हुई फिर भी सुख शांति की झलक उसके भाग्य में कहॉ है इस दुखमय संसार में, बोलने की क्षमता होकर भ मूक जैसा द्वीन्द्रिय हुआ तो लट, त्रीन्द्रिय जैसे चींटी, चौइन्द्रिय जैसे भौंरा आदि अगणित शरीरों को धारण कर -कर के मरता रहा और अनंतो प्रकार के भयंकर दुखों को सहन करता रहा है।

प्रश्न १. स्थावर से त्रस पर्याय की प्राप्ती किस प्रकार से हुई ?
उत्तर - स्थावर पर्याय से इस जीव को त्रस पर्याय उतनी ही कठिनता से प्राप्त हुई है जितनी कठिनता से किसी मनुष्य को चिन्तामणि रत्न की प्राप्ती होती है।

.१३.

प्र.२. त्रस पर्याय में जीव ने कौन-कौन शरीर धारण किये ?
उत्तर- त्रस पर्याय में इस जीव ने लट, चींटी, भौंरा आदि अनेकों पर्याय को धारण किया।

प्र.३. द्वीन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक की पर्याय में यह जीव सुखी रहा क्या ?
उत्तर - द्विन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक की पर्याय में इस जीव ने कित्र्चीत मात्र भी सुख नहीं पाया।

प्र.४. द्वीन्द्रिय से चौइन्द्रिय तक के जीवों को क्या कहते ?
उत्तर - दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय जीवों को विकलत्रय कहते है।

प्र.५. त्रस पर्याय किसे कहते है ?
उत्तर - त्रस नाम कर्म के उदय से प्ा्रप्त जीवों के शरीर तथा आत्मा की संयुक्त पर्याय को त्रस पर्याय कहते है।

पंचेन्द्रिय तिर्यत्र्य के दु:ख

कबहू पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सेनी ह्क्रूर निबल पशु अति खाये भूर।। ७।।

अन्वयार्थ - (कबहूँ पंचे न्द्रिय पशु भयो) कभी यह जीव पंचेन्द्रिय पशु पर्याय में पैदा हुआ, (मन बिन निपटअज्ञानी थयो)वहॉ पर भी मन रहित असंज्ञी पर्याय में अत्यंन्त मूर्ख रहा, (सिंहादिक सैनी ह्क्रूर) कभी सिंह आदि सैनी दुष्ट हुआ तो (भूर निबल पशु अति खाये) सैकडों निर्बल पशुओं को मार-मार कर खाया।

भावार्थ - भाग्योदय से यदि यह जीव तिर्यंच गति में पंचेन्द्रिय भी हुआ तो सूख काहॉ ? वहॉ पर भी असंज्ञी अज्ञान अवस्था में वचनातीत दुखो को सहन करता रहा। कभी सैनी भी हुआ तो सिंह अदि क्रुर पर्यायों को धारण कर अपने से निर्बल हिरण आदि पशुुओ को मार-मार करउभक्षण करता रहा। इस प्रकार वह सैनी होकर भी पापाचार के कारण दुखी ही रहा। सैनी असैनी दोनों ही अवस्थाओं में सुख शांती का अनुभव नहीं किया।

.१४.

प्र.१. मन किसे कहते है ?
उत्तर - अच्छा बुरा विचार करने की योग्यता को मन कहते है।

प्र.२. जब यह जीव पंचेन्द्रिय पर्याय में गया तो कौन हुआ ?
उत्तर - पंचेन्द्रिय पर्याय में यह जीव मन के बिना अज्ञानी रहा और मन सहित भी हुआ तो क्रूरसिंह आदि हिंसक पर्यायों में उत्पन्न हुआ।

प्र.३. सिंहादिक क्रुर पशु होकर इस जीव ने क्या किया ?
उत्तर - सिंहादिक क्रुर पशु होकर अपने से निर्बल पशुओं को भक्षण किया।

प्र.४. पंचेन्द्रिय तिसंत्र्च किसे कहते है ?
उत्तर - स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु एवं करणे इन पांचो इंन्द्रियों सहित तिर्यत्र्च नामकर्म के उदय से कुटिल परिणाम पूर्वक जो पर्याय प्राप्त होती है उसे पंचेन्द्रिय तिर्यत्र्च कहते है।

प्र.५. पंचेन्दिंय तिर्यत्र्च जीव कितने प्रकार के हा ते है ?
उत्तर - पंचेन्द्रिय प्राणी मूल में दो प्रकार के होते हैं एक सैनी जैसे-मनुष्य , सिंह, गाय, बन्दर आदि दुसरा असैनी जैसे-कबूतर, कोई सर्प, तोता आदि।

.१५.

तिर्यत्र्च गति में निर्ब्रलता का दु:ख

कबहूँ आप भयो बलहीन , सबलनि करि खायो अतिदिन।

छेदन भेदन भूख प्यास, भार वहन हिम आतप त्रास।। ८।।

अन्वयार्थ - (कबहूँ आप भयो बलहीन) कभी यह जीव निर्बल हुआ तो (अतिदीन सबलनि करि खायो) अतिदीनता पूर्वक अपने से बलवान जीवों द्वारा भक्षण किया गया। (छेदन भेदन भूख प्यास भार वहन हिम आतप त्रास) छेदन, टुकडे करने, भूख प्यास, भार ढोना, शीत उष्ण आदि अनेकों प्रकार के दुखों को सहन किया।

भावार्थ - इस जीव ने तिर्यञ्च गति में रहकर अनंतों प्रकार के दुख उपार्जन किये, किंचितमात्र भी दुख की अनुभूति नहिं हुई। जब यह सिंह आदि बलवान पशु हुआ तब हिरण आदि निर्बल प्राणियों को मार-मार कर भक्षण करता रहा एवं जब स्वयं निर्बल पशु, गाय, बैल आदि हुआ तब चीते व्याघ्र आदि बलवान पशुओं के द्वारा अति दीनता पूर्वक भक्ष्ंण किया गया। यदि सौभाग्य से यह जीव इन दुखों से बच भी जाता है, तो भी उसे शांति काहॉ ? कभी हल, बैलगाडी आदि खेती के कार्य योग्य बनाने के लिये नाक आदि का छेदन - भेदन किया जाता है, खाना - पानी पराधीन होने के कारण समय से नहीं मिलता, मूक होने से शक्ति से अधिक भार वहन करना पडता है, शीत और उष्ण की वेदना तो स्वाभाविक ही सहन करनी पडी।

प्र.१. यह जीव जब निर्बल हुआ तब इसकी क्या दशा हुई ?
उत्तर - जब यह जीव निर्बल हुआ तो सबल पशुओ के द्वारा अति दीनतापूर्वक भक्षण किया गया।

प्र.२. जीव ने और भी दू:ख पाये है क्या ?
उत्तर - हॉ, जीव ने और भी अनेकों प्रकार के दु:ख उपार्जन कियं हैं। छेदन, भेदन, भूख, प्यास, भार ढोना, शीत उष्ण आदि।

प्र.३. यह जीव निर्बल क्यों होता है ?
उ त्तर - सक्षम अवस्था में क्रुरतावश अन्य निर्बल दीन-दुखी निरपराधी जीवों को सताने के फलस्वरुप यह जीव निर्बल होता है ।

प्र.४. दीन किसे कहते है ?
उत्तर - जो जीव दूसरों से बदला लेने में सक्षम नहीं है और अन्दर ही अन्दर अपने आपको होन महसूस करते हुए पीडीत होता रहता है, संक्लेश परिणाम करते हुए दूसरों के अत्याचारों को सहन करना पडता है उसे दीन कहते है।

प्र.५. क्या सभी पशुओं को कष्ट होते है ?
उत्तर - जिन्होंने पूर्व अवस्था में दूसरों को कष्ट पहुॅचाया है उन्ही को उसके फलस्वरुप छेदन ,भेदन, बध, बन्धन , आदि कष्ट होते है, सभी को नही।
कुछ ऐसे भी पशु देखे जाते है जिपको मनुष्यों से भी अधिक सुख सुविधाये प्राप्त है।

तिर्यञ्चों के और भी दु:ख

बध बन्धन आदिक दु:ख घने, कोटी जीभतें जात न भने।
अति संक्लेश भात तें मरृयों, घोर श्वभ्र सागर में परृयो।। ९।।

अन्वयार्थ - (वधबन्धन आदिक दु:ख घने) बधबन्धन आदि अनेकों प्रकार के दु:ख इस जीव ने पशु पर्याय में पाए, (कोटि जीभतें भने न जात) करोडों जिव्हाओं से भी विवेचन नहीं किया जा सकता, (अति संक्लेश भावतें मरृ यो) अत्यन्त खोटे परिणामों से मरण किया तो, (घोर श्वभ्र सागर में परयो) भयानक नरक रुप सागर में जा पडा।

भावार्थ - तिर्यञ्च गति में अगणित दुखों को यह जीव सहन करता रहता है, कभी सिंह जैसी सबल पर्याय को प्राप्त किया तो हत्या जैसे महापाप का भागी बना। बैल, भैस, गधा, सुअर आदि निर्बल पशु हुआ तो सुख काहॉ ? कहीं बध है तो कही बंधन, प्रत्येक क्षण हर परिस्थिती में कष्ट ही कष्ट है। इन कष्टों की विवेचन करोडों जिव्हाओं से भ

करना शक्य नही है। निरन्तर यातनाओ के कारण अत्यंन्त खोटे भावों से मरण किया तो खोटे भावों के फलस्वरुप भयंकर नरकों में जा पडा।

प्र.१. पशु पर्याय में कितने दु:ख है ?
उत्तर - पशु पर्याय में बध-बंधन आदि अनेकों प्रकार के दु:ख है।

प्र.२. पशु पर्याय के दु:खो को कहा जा सकता है क्या ?
उत्तर - पशु पर्याय के दु:खो ं को करोंडो जिव्हाओं से भी नहीं कहा जा सकता है।

प्र.३. पशु पर्याय में जीवों का मरण कैसे होता है ?
उत्तर - पशु पर्याय में प्राय:कर कष्टोंको सहन करते हुये अत्यन्त संक्लेश भावों से मरण होता है परन्तू सम्यग्दृष्टि पशुओं का मरण समता पूर्वक होता है।

प्र.४. संक्लेश भावों से मरण का क्या फल है ?
उत्तर - संक्लेश भावों से मरण करने के कारण इस जीव को भयानक नरकों में जाना पडता हैं।

प्र.५. नरक किसे कहते है ?
उत्तर - जहां पर जीव एक क्षण भी रुकना नहीं चाहता परन्तु आयु पर्यन्त वहॉ रहना पडता है, अर्थात जहॉ जीवों के परिणाम प्रतिक्षण संक्लेशित रहते है।

नरक भूमि एवं नरक के दु:ख

तहॉ भूमि परसत दु:ख इसो, बिच्छू सहस डसो नहिं तिसो।
तहॉ राध श्रोणित वाहिनी, कृमि कुल किलिते देह दाहिनी।। १०।।

अन्वयार्थ - (तहॉ भूमि परसत इसो दू:ख) उन नरकों की भूमि को स्पर्श करते ही इतना दु:ख होता है कि (सहस बिच्छु डसो तिसो नहिं) यहां पर एक साथ हजार विच्छू काट लें उतना दु:ख फिर भी नहीं होतो। (तहां राध श्रोणित वाहिनी) उन नरकों में रक्त पीव से भरी नदी है और वह नदी (कृमि कुल कलित देह दाहिनी) कीडों के समूह से भरी हुई है औरे देह में दाह पैदा करने वाली है।

भावार्थ - नरकों के दु:ख कल्पनातीत है, एक क्षण मात्र की भी शान्ती नहीं ही। जब यह जीव नरकों में जाता है तो वहां की पृथ्वी को स्पर्श करते ही ऐसा दू:ख होता है जैसा यहॉ एक साथ हजारों बिच्छु काटने पर भी नहीं होता। व्याकुल जीब शान्ती पाने की भावना से वहती हुई नदी की शरण में जाता है, परन्तू दुर्गन्धमय पीप एवं खून रुप जल से भरी करोंडो कीडे जिनमे किलमिमला रहे है, येसी भयंकर शरीर में दाह पैदा करने वाली नदी में जाकर और भी भीषण दु:खों से बैचेन हो जाता है।

प्रश्न १. नरकों की भूमि को स्पर्श करने से कितना कष्ट होत है ?
उत्तर - यहॉ पर एक साथ हजार बिच्छू काटने पर जितना दु:ख होता है उससे भी अधिक कष्ट नरकों की भूमि को स्पर्श करने मात्र से होता है।

प्रश्न२. नरक-नदियों का स्वरुप ?
उत्तर - नरकों की नदियां पीप एवं खून रुप जल से भरी है और असंख्यात कुमियों के समूह से युक्त है तथा वे नदियां शरीर में भयंकर दाह उत्पन्न करने वाली है।

प्रश्न ३. क्या नरकों में मध्य लोक सदृश ही नदी आदि की रचना है ?
उत्तर - नरकों में नदी, वृक्षादि की रचना मध्य लोक सदृश नहीं है। वहा की समस्त रचना कृत्रिम अर्थात नारकियों के द्वारा की गयी बिक्रीया है।

नरक के सेमर वृक्ष एवं शीत-उष्णता के दू:ख

सेमर तरुदल जूत असि पत्र, असि ज्यों देह विदारे तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।। ११।।

अन्वयार्थ - (तत्र असि पत्र जुत दल सेमर तरु) उस नरकों में तलवार के समान धार वाले पत्तों के समूह से युक्त सेमर वृक्ष है, उनके पत्ते (असि ज्यों देह विदारें) तलवार के समान शरीर को विदीर्ण कर देते है (तत्र मेरु समान लोह गलि जाय) उन नरकों में मेरु पर्वत के समान भी लोह गलकर हो जाय (ऐसी शीत उष्णता थाय) इतनी शीत एवं गर्मी होती है।

भावार्थ - नरकों में प्राकृतिक रुप से ही अत्यंन्त दु:ख है, नदी ही दाह को शान्त करने की भावना से यह जीव जब सेमर वृक्षो की शरण में जाता है तब उन वृक्षो ं के तलवार के समानपैनी धार वाले पत्तों से शरीर वदीर्ण हो जाता है। कहॉ है ? शान्ति की सांस उनके भाग्य में, वहां की शीत और उष्णता भी इतनी भयंकर है जिसमें मेरु पर्वत के समान लोहे का गोला भी गलकर पानी -पानी हो जाता है।

प्रश्न१. नरकों के वृक्षो का क्या नाम है ?
उत्तर - नरकों के वृक्षो का ना|म कष्टदायक होने से सेमर है।

प्रश्न२. नरकों में वृक्षों के पत्ते कैसे होते है ?
उत्तर - नरकों के वृक्षों के पत्ते तलवार की धार के समान तीक्ष्ण धार वाले पैने होते है।

प्रश्न३. सेमर वृक्षों की छाया में जीव को शान्ति मिलती है क्या?
उत्तर इ सेमर वृक्षों की छाया में जीव को शान्ति के स्थान पर असहय वेदना होती है क्योंकि उन वृक्षों के नीचे बैठते ही उनके पत्ते शरीर पर गिरकर विदीर्ण कर देते है।

प्रश्न ४. नरकों में शीत एवं उष्णता कैसी है ?
उत्तर - नरकों में शीत एवं उष्णता इतनी भीषण होती है जिसमें मेरु पर्वत के समान लोहे का गोला भी गलकर भस्म हो जाता है।

प्रश्न ५. नरकों में वृक्ष वनस्पतिकायिक है क्यों ?
उत्तर - नरकों में मात्र पंचेंन्द्रिय जीव ही होते है शेष जो कुछ भी विवेचन है वह सभी विक्रीया है।

आपसी कलह और तृषा का दु:ख

तिल तितल करें देह के खण्ड, असुर भिडावे दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धु नीरतें प्यास न जाय, तो पण एक न बुंद लहाय।। १२।।

अन्वयार्थ - (तिल तिल देह के खण्ड करें) उन नरकों में नारकी परस्पर एक दूसरे के छोटे-छोटे तिल के समान शरीर के टुकडे कर देते है और (दुष्ट असूर भिडावे प्रचण्ड) दुष्ट असुर जाति के देव नारकी जीवों को आपस में भिडाते है। वहॉ पर इतनी प्यास लगती है कि (सिन्धु नीरतें प्यास न जाय) समुद्र का पानी पी लेने पर भी प्यास नही शांन्त होती (तो पण एक न बूंद लहाय) परन्तु एक बूंद भी पानी वहॉ पर पीने को नहीं मिलता है।

भावार्थ - कितने भयानक है नरकों के दु:ख, जिन्हे निरन्तर पाप कर्मो के उदय में यह जीव सहन करता रहता है। प्रतिक्षण मरना चाहता है परन्तु आयु पूर्ण् हुए बिना मर नहीं सकता। नरकों से निकलकर भागना चाहता है परन्तू नरकों से बाहर निकल ही नहीं पाता, एक नारकी दूसरे नारकी के शरीर के छोटे छोटे तिल के समान टुकडे कर देते है, फिर भी जीव मरता नहीं , पारे के समान शरीर के सभी ठुकडे पुन: जुड जाते है, कौतुहलवश असुर जाति के देव तिसरे नरक तक जाकर नारकियों की पूर्व बैर स्मरण कराकर लडाते है। उन नरकों में इतनी भयंकर प्यास लगती है कि समुद्र का सारा का सारा पानी पीने से भी प्यास शान्त नहीं होती परन्तु एक बुंद भी पानी नहीं मिलता पानी मांगने पर वहां के नारको तपा तपाया तांबा और लोहा मुख में जबरदस्ती भर देते है।

प्रश्न १. नरकों में नारकी क्या करते है ?
उत्तर - नरकों में नारकी निरन्तर लडते झगडते रहते है और एक दुसरे के शरीर को काट काट कर छोटे इ छोटे तिल के समान टुकडे कर देते है।

प्रश्न २. असुर कुमार जाति के देव नरकों में क्यों जाते है ?
उत्तर - असुर कुमार जाति के देव नरकों में कोतुहल वश जाते है और वहॉ पर नारकी जीवों की पूर्वभव के बैर-भाव का स्मरण कराकर आपसमें लडाकर आनंद मनाते है, मनोरंजन करते है।

प्रश्न ३. क्या देव तीसरे नरक तक ही जाते है ?
उत्तर - यद्यपि देवों में सप्तम नरक तक जाने की क्षमता है परन्तु तदृरुप निमित्तों के अभाव में वहॉ जाने का भाव ही नही होता। देवों का गमनागमन आगमानुसार तृतीय नरक पर्यन्त ही परिलक्षित होता है।

प्रश्न ४. क्या असुरकुमार देवों के सिवाय स्वर्गो के देव नरकों में नहीं जाते ?
उत्तर - बिना कारण स्वर्गो के देव नरकों में नहीं जाते, हां अगर किसी जीव से पूर्वभव का विशेंष सम्बन्ध हो तो उसे सम्बोधने के लिये जाते है , जैसे सीता का जीव लक्ष्मण एवं रावण की सम्बोधने के लिये गया था।

प्रश्न५. क्या सीता का जीव प्रतीन्द्र देव, नरकों से रावण एवं लक्ष्मण को बाहर निकाल सका था ?

उत्तर - अनेकों प्रयत्न करने पर भी सीता का जीव रावण एवं लक्ष्मण को नरकों से बाहर नहीं निकाल सका था, मात्र उपदेश देकर उनको सम्यग्ज्ञान कराया थज्ञ।

प्रश्न ६. नरकों में प्यास कैसी लगती है ?
उत्तर - नरकों में इतनी अधिक प्यास लगती है कि समुद्र का सम्पूर्ण जल पीने पर भी शान्त न हो।

प्रश्न ७. नरकों में पीने को पानी मिलता है क्या ?
उत्तर - नरकों में एक बुंद भी पानी पीने को नहीं मिलता। प्यास से तृषित पानी के लिये तडफते हुये नारकियों के मुख में अन्य नारकी कडाहोएमें खौलते हुये ताम्र एवं लोह जल की बलातृ उनके मुंह में उडेलते है जिससे उनकी वेदना असहय वचनातीत हो जाती है।

प्रश्न ८. नरकों में कभी हम भी गये है क्या ?
उत्तर - नरकों में हमने भी अनेंको बार जाकर वहां के भीषण दु:खो को सहन किया है। परन्तु आज यहां आकर भौतिक चकाचौंध में एवं इन्द्रिय लम्पटता में सब कुछ भूल चुके हैं।

नरकों में भूख और नर पर्याय

तीन लोक को आज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दु:ख बहु सागर लौं सहै, करम जोगतें नरगति लहे।ा १३।ा

अन्वयार्थ - उन भयावने नरकों में इतनी भूख लगती है कि (तीन लोक को नाज जू खाय) तीनों लोकों का अनाज भी भक्षण कर लिया जाये तो भी (भूख मिटे न कणा न लहाय) भूख मिट नहीं सकती परन्तु वहां पर खाने को एक कण मात्र भी नहीं मिलता है , (ये दु:ख बहु सागर लौं सहे) इस प्रकार के दु:ख अनेकों सागर पर्यन्त सहन किये है। (करम जोग ते नरगति लहे) किसी पुण्य कर्म के योग से मनुष्य पर्याय प्राप्त हुई है।

भावार्थ - उन भयावने नरकों मे पीने को पानी की ऐ क बूंद भी नहीं मिली तो भोजन का प्रश्न ही काहॉ ? भुख इतनी लगती है की तीन लोकों के अनाज का भक्षण कर जाने पर भी शान्त नहीं हो परंन्तू एक कण भी नसीब नहीं होता। इस प्रकार अनन्तानन्त दु:खं अनेकों सागरों पर्यन्त इस जीव ने उन नरकों में जाकर सहन किये जिनका नाम लेने मात्र से रोमांच हो उठते है। इन नरकों में जीव नेजो अनन्तानन्त दु:खो के प्रतिक्षण सहन किया है इन्हे या तो

सहन करने वाला जीव ही जानता है या मात्र केवली भगवान। दु:ख सागर में गोते खाते-खाते नरकों की आयु पूर्ण होने पर किसी विशेष शुभ पुण्य कर्म के उदय से मनुष्य पर्याय प्राप्त की।

प्रश्न १. नरकों में भूख लगती है क्या ?
उत्तर - नरकों में भूख इतनी भयंकर लगती है कि तीनों लोकों का अनाज खाने पर भी नहीं मिट सकती।

प्रश्न २. नरकों में खाने के लिये मिल ता है क्या ?
उत्तर - न रकों में अन्न का एक कण भी खाने को नहीं मिलता। जब भूख से व्याकुल होकर भोजन मांगता है तो वहां के अन्य नारकी उसके स्वयं के शरीर का मांस सण्डसियों से खींच-खींच कर उसके मुख में जबरदस्ती ठुंसते है।

प्रश्न ३. नरकों के समुचित दु:खों की विवेचना की जा सकती है क्या ?
उत्तर - नरकों के भयंकर दु:खो की पूर्ण विवेचना करने में कोई भी समर्थ नहीं है , सिवाय केवली भगवान के।

प्रश्न ४. नरकों में जीव कैसे चला जाता है ?
उत्तर - अनावश्यक आरम्भ एवं अधिक परिग्रह के कारण भयंकर पाप होने से यह जीव नरकों में जाकर अनेकों प्रकार की असहय वेदना सहन करता है।

प्रश्न ५. नरक के दु:खो से बचने का क्या उपाय है ?
उत्तर - नरकों के भयावने दु:खो से बचने का उपाय है समता, कर्त्तव्य पालन एवं मोक्ष मांग पर अनुगमन करना।

प्रश्न ६. नरक गति से मनुष्य गति की प्राप्ती कैसे हुई ?
उत्तर - पूर्व में किये किसी विशेष शुभ पुण्यकर्म के उदय से नरक गति से मनुष्य पर्याय की प्राप्ती हुई है।

मनुष्य गति में गर्भ एवं प्रसव के दु:ख

जननी उदर वस्यो नवमास, अडग् सकुचतें पाई त्रास।
निकसत जे दु:ख पाये घोर , तिनको कहत न आवे ओर।। १४।।

अन्वयार्थ ़ (जननी उदर नवमास वस्यो) मता के पेट में नवमास पर्यन्त रहा,(अंग सकुचते त्रास पायी) अंग सिकुडने से वहॅा दु:ख पाया (निकसत जे घोर दु:ख पाये) उत्पन्न होते समय जो घोर दु:ख प्राप्त किये (तिनको कहत ओर न आवे) उनका वर्णन करने पर कोई अन्त नहीं आ सकता।

भावार्थ - यह जीव नरक गति में असहय भयंकर दु:खो को पाकर आता है। किसी विशेष पुण्य कर्मो के उदय से मनुष्य पर्याय में माता के गर्भ में नौ मास पर्यन्त हाथ-पैर आदि अंगो को सिकोडे हूए जिन भयंकर दु:खो को उपार्जन किया है उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मॉं के उदर से उत्पन्न होते समय जिस वेदना का अनुभव किया उसे यह जीव स्वयं ही जाने या भगवान। जैसे सुनार तांती में से तार को खींचकर पतला करता है वैसी ही दशा उत्पन्न होते समय इस जीव की होती है। उत्पत्ती समय की दु:खो की विवेचना कितने भी समय तक की जाय परन्तु अन्त आने वाली नहीं है। इतनी भयंकर है वह वेदना।
प्रश्न १. मॉ के उदर में यह प्राणी कितने समय पर्यन्त रहा ?
उत्तर - गर्भ में आने के उपरान्त मां के उदर में नवमास पर्यन्त रहता है।

प्रश्न २. माता के पेट में रह कर इस जीव ने अपना जीवन कैसे व्यतीत किया ?
उत्तर - मॉं के उदर में रहकर अंगोको सिकोडे हुये वचनातीत दु:ख को सहन किया।

प्रश्न ३. माता के उदर से जन्म लेने पर भी कुछ कष्ट होता है क्या ?
उत्तर - माता के उदर से उत्पन्न होते समय जो कष्ट होते है उनकी विवेचना करोडों जिव्हाओं से भि करना शक्य नहीं है।

प्रश्न ४. मनुष्य की आयु माता के गर्भ में आने पर प्रारम्भ हो जाती है या उत्पन्न होने पर ?

.२७.

उत्तर - जीव जिस समय माता के गर्भ में आता है निश्चित से वही जन्म है उसी समय से उसकी आयु प्रारम्भ हो जाती है परन्तु लौकीक क्षेत्र में जीवों की आयू उत्पन्न होने के समय से ही मानते है।

मनुष्य आयु में तीन अवस्थाओं के दु:ख

बालपने में ज्ञान न लहयो, तरुण समय तरुणी रत रहयो।
अध्दृ मृतक सम बूढापनों, कैसे रुप लखें आपनो।। १५।।

अन्वयार्थ - (बालपने में ज्ञान न लहयो) वाल्यकाल में अज्ञानी रहा (तरुण समय तरुणीरत रहयो) जवानी में स्त्री आदि विषय वासनाओं में लीन रहा (बूढापनों अर्ध्द मृतक सम) बुढापा अर्धमरे के समान है (आपनों रुप कैसे लखें) (इस बुढापें में जब इन्द्रिय काम नहीं करती) तब अपनें रुप को कैसे अवलोकन किया जा सकता है ?

भावार्थ - बाल्यावस्था में माता-पिता परिजन गुरुजन कोई कितने भी हित की बात बताये परन्तू समझ में नहीं आती, स्कूल पढनें की अपेक्षा मिटटी मैं खेल कर आनंन्द मानता है, कॉलेज में शिक्षा के स्थान पर सिनेमा में आनन्द लेता है, युवा अवस्था होते ही लीन हो गया वासनाओं में , सब कुछ सम्पत्ति स्त्री मात्र को मानकर उसी में सुख का अनुभव करता रहा। विषय भोगों के फलस्वरुप जब बुढापा आया, पैर थक गये, कमर झुक गई, आखों से कम दिखने लगा, दांत मुख से विदा हो गये, पश्चाताप होने लगा जवानी में अनीती पूर्वक भोगे हुए भोगों का, अर्ध्द मृतक के समान ये वृध्दावस्था हो जाती है, जिसमें धर्म कर्म नित्य नियम कुछ भी करने में सक्षम नहीं रहता तब कितना कष्ट होता होगा ?

.२८.

किसी नब्बे वर्ष के वृध्द बाबा जी से पूछने पर ज्ञात हो सकता है। ऐसी जर-जर अवस्था में आत्मावलोकन ध्यान आदि साधना कैसे कर सकता है ?

प्रश्न १. बाल्यावस्था में मनुष्य स्वयमेव ज्ञान प्राप्ती में क्यों नहीं लगता ?
उत्तर - बाल्यावस्था में हिताहित का विवेक नहीं होता, इसलिये ज्ञान की प्राप्ति अत्यन्त कठिन मानकर उससे दूर ही रहने का प्रयत्न करता है।

प्रश्न २. जवानी में मनुष्य स्त्री आदि विषय - वासनाओं में रत क्यों हो जाता है ?
उत्तर - भेद विज्ञान के अभाव में इन्द्रिय कामादि विकारों के वशीभूत होकर स्त्री आदि की वासना में भोला मनुष्य फंस जाता है।

प्रश्न ३. वृध्दावस्था में आदमी की स्थिती कैसी बन जाती है ?
उत्तर - अर्ध्दमृतक मनुष्य के समान वृध्दावस्था में आदमी की स्थिती बन जाती है।

प्रश्न ४. वृध्दावस्था में मनुष्य पुरुषार्थ कर सकता है क्या ?
उत्तर - वृध्दावस्था में आदमी अधमरे के समान हो जाता है इसी जिये आत्म पुरुषार्थ करने में समर्थ नहीं होता।

प्रश्न ५. क्या वृध्द मनुष्य आत्म कल्याण नहीं कर सकते है ?
उत्तर - वृध्द जन भी आत्म कल्याण कर सकते है परन्तु रागी, द्वेषी मोही जिन्होंनी जवानी में ब्रत आदि अभ्यास नहीं किया है उनके लिए कठिन है।

.२९.

कभी अकाम निर्जरा करें, भवनत्रिक में सुरतन धरे।
विषय चाह दावानल दहयो, मरत विलाप करत दु:ख सहयो।। १६।।

अन्वयार्थ - (कभी अकाम निर्जरा करें) यदि कभी इस जीव ने अकाम निर्जरा की तो (भवनत्रिक में सुरतन धरें) भबनवासी व्यन्तर एवं ज्योतिषी देवों में देव पर्याय को धारण करता है (वहां पर भी)(विषय चाह दावानल दहयो) विषय चाह रुपी अग्नि में जलता रहा (मरत विलाप करत दु:ख सहायो)आयु की अन्त वेला में अत्यन्त रुदन करके अनेकों प्रकार के कष्टों को सहन किया।

भावार्थ - मनुष्य गति में यह जीव कभी अकाम निर्जरा भी कर लेता है अर्थात समता के साथ दुख सहकर निरीहता रख लेता है तो भबनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होतो है , वहां पर भी विषय वासना चाह रुपी आग में निरन्तर झुलसता हुआ आर्त रौद्र ध्यान करके निरन्तर पाप का बंध करता रहता है। आयु समाप्त होने से छः माह पूर्व आपनी विमानमें पडी हुई पुष्प माला को सुरझाई देखकर विभंगावधि से अपना मरण समीप जानकर अत्यन्त दुखी होता है।

प्रश्न १. निर्जरा किसे कहते है ?
उत्तर - आत्म प्रदेशों से संयोजित कर्मो का एकदेश वियोग होना निर्जरा है।

प्रश्न २. निर्जरा के कितने भेद है ?
उत्तर - निर्जरा के दो भेद है :-
(१) सविपाक निर्जरा (२) अविनाक निर्जरा।

प्रश्न ३. सविपाक निर्जरा किसे कहते है ?
उत्तर - समस पूर्ण् होणे पर फल देते हुए कर्मो का स्वतः खिर जाना सविपाक निर्जरा है। जैसे- डाली पर लगे हुये आम का समय आने पर स्वतः पकना।

प्रश्न ४. अविपाक निर्जरा किसे कहते है ?
उत्तर - मोक्ष प्राप्ति की भावना से, रत्नत्रय पुरुषार्थ के बल से असमय में ही संवर पूर्वक कर्मो का निर्जीण हो जाना अविपाक निर्जरा है। जैसे - कच्चे आम का समय के पूर्व पाल में पकना।

प्रश्न ५. मनुष्य पर्याय से यह जीव देव कैसे हो जाता है ?
उत्तर - मनुष्य पर्याय से कुतप, नियम व्रत नैतिक आचरण एवं सम्यक्त्व पूर्वक अशुभ कर्मो की निर्जरा कर यह जीव देव पर्याय की प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न ६. भवनत्रिक किसे कहते है ?
उत्तर - भबनवासी, व्यन्तर एवं ज्योतिर्षी देवों के समूह को भवनत्रिक कहते है।

प्रश्न ७. भवनवासी देव किन्हें कहते है ?
उत्तर - चित्रा पूथ्वी के खर भाग के भवनों में रहने वाले असूर कुमार, नागकुमार, बिद्युतकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार इन दस प्रकार के देवों को भवनवासी देव कहते है। उक्त दस प्रकार के देवों में से असुरकुमार जाति के देव पंक भाग में निवास करते हैं।

प्रश्न ८. व्यन्तर देब किन्हे कहते है ?
उत्तर - चित्रा पृथ्वी के खर भाग में, पंक भाग में (राक्षसकुमार) तथा नदी, तलाव, वृक्षृ , पर्वतादि विभिन्न स्थानों पर निवास करने वाले तथा कौतुहल प्रिय किन्नर , किम्पुरुष महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच इन आठ प्रकार के देवों को व्यन्तर देव कहते है।

प्रश्न ९. ज्योतिषी देव किंन्हें कहते है ?
उत्तर - सुमेरु पर्वत की निरन्तर प्रदक्षिणा देने वाले तथा अन्य द्वीप समुद्रो में अवस्थित होकर प्रकाशित रहने वाले सूर्य, चंन्द्र, ग्रह , नक्ष्ंत्र , प्रकीर्णक इन पाँच प्रकार के देवों को ज्यातिषी देव कहतें है।

प्रश्न १०. भवनत्रिक के देव अपना जीवन यपन कैसे करते है ?
उत्तर - भवनत्रिक के देव प्राय: निरन्तर विषय चाह रुपी ज्वाला में जलते रहते है।

सम्यग्दर्शन के अभाव में

जो विमानवासी हूं थाय, सम्यग्दर्शन बिन दु:ख पाय।
तहॅ तें चय थावर तन धरे, यों परिवर्तन पूरे करे।। १७।।

अन्वयार्थ - (जो विमान वासी हूँ थाय) यदी यह जीव कभी स्वर्ग में वैमानिक देव भी हुआ तो (सम्यग्दर्शन बिन दु:ख पाय) सम्यग्दर्शन के बिन भी दुखी रहा (तहॅ ते चय) स्वर्ग से च्युत होकर (थावर तन धरे) स्थावर पर्याय की वनस्पति कायिक में उत्पन्न हुआ (यों परिवर्तन पूरे करे) इस प्रकार इस जीव ने (चारों गतियों के पंच परावर्तन) पूरे करे।

.३२.

भावार्थ - कुतप आदि के प्रभाव से अदि यह जीव कभी स्वर्गो में जाकर देव भी हो गया तो वहां पर भी सम्यग्दर्श्न के अभाव में दुखी रहा। अपनेसे अधिक समृध्दशाली देवों के वैभव का अवलोकन कर निरन्तर ईष्या द्वेष रुपी आग में जलता रहा। पुण्यशाली देवों के चाकर वाहन आदि बनने के दुख से भी निरंतर दुखी रहा। समस्त भौतिक सामग्री उपलब्ध होने पर भी मिथ्यादृष्टी देवों को मानसिक दुख की वेदना कल्पनातीत रहता है। आयु का अन्त समीप जानकर मन में सोचता है कि कहॉ जाऊॅगा अब मै ? अगर मनुष्य पर्याय में गया तो मॉ के पेट में नव महीने तक उस दुर्गन्ध को कौन सहेगा यदि पशु पर्याय में गया तो मारन ताडन भूख-प्यास, छेदन-भेदन, भार वहन आदि के दुखो को सहन करना पडेगा इससे तो अच्छा है वनस्पति कायिक में चजें ऐसा निदान बंध कर स्वर्ग से स्थावर पर्याय में आकर उत्पन्न होतो है। इस प्रकार चारों गति चौरासी लाख योनियों में द्रव्य क्षेत्र काल भव और भाव से प्रच पनावर्तन रुप संसार भ्रमण को पूरा करता रहता है।

प्रश्न १. विमानवासी देव किन्हें कहते है ?
उत्तर - प्रथम स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिध्द पर्यन्त के विमानों में रहने वाले देवों को विमानवासी देव कहते है।

प्रश्न २. विमानवासी देव सुखी हैं क्या ?
उत्तर - नहीं, विमानवासी देव भी सम्यग्दर्शन के अभाव में दु:खी रहते है।

.३३.

प्रश्न ३. मिथ्यादृष्टि देव स्वर्ग से कहॉ पर जाते है ?
उत्तर - मिथ्यादृष्टि देव दुर्ध्यान से शरीर छोडकर मनुष्य तियात्र्च एवं स्थावर पर्याय में उत्पन्न होते है।

प्रश्न ४. देव मरकर क्या पांचो स्थावरों में उत्पन्न हो सकते है ?
उत्तर - देव मर कर अग्निकायिक और वायुकायिक में उत्पन्न नहीं होते।

प्रश्न ५. देव पर्याय से मुक्ति है क्या ?
उत्तर - देव पर्याय में सम्यक् चारित्र का अभाव होने से मुक्ति नहीं है। देव मनुष्य पर्याय धारण करके रत्नत्रय की पूर्ण आराधना पूर्वक ही मुक्ति प्राप्त कर सकते है।

प्रथम ढाल का सारांश

जगत में जितने भी प्राणी है, वे सभी सुखी रहना चाहते है और दु:खों से भयभीत रहते है, किन्तु सुखदुख की सच्ची परख न होने से चिन्तित सुखान्वेषी भव्य जीवों को करुणावन्त आचार्य धर्मोपदेश (सुखी बनने का उपाय) बतातें हैं और ध्यान से सुनने की शिक्षा देते है। प्रथम तो जीव के संसार में भटकने का करण अनादि कालीन मोह का नशा है, जिसके फलस्वरुप अनन्त कालीन निवास एकेन्द्रिय सूक्ष्म शरीर मय निगोद है, फिर स्थूल शरीर मय पॉच स्थावर काय की दशा पश्चात भाग्योदय से त्रस पर्यायमें दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चौइंद्रिय तथा पंचइंद्रिय असंज्ञी, संज्ञी पर्पाय रुप तिर्यत्र्च गति के दु:ख भोगकर, संक्लेश परिणामों से मरण कर नरक गति में गया तथा। किसी पुण्य कर्म के उदय से मनुष्य पर्याय में आता है। बाल अवस्था अज्ञानता में, जवानी भोग विलास में तथा वृध्दावस्था कमजोरी एवं लोलूपता में व्यतीत की।

.३४.

यदी कहीं समता भाव से मरण कर देव भी हुआ तो भवनवासी , व्यन्तर, ज्योतिषी। इसमें तीव्र मोह से विषय लोलूपी ही रहा तथा स्वर्ग में वैमानिक भी हुआ तो सम्यक्त्व के अभाव में भेद विज्ञान के बिना संयोगी भाग विलासमय सामग्री में मुग्ध होकर जीवन के क्षण व्यतीत कर फिर स्थावर काय में जन्म लिया। इस तरह मोह के कारण द्रव्य, क्षेत्र , काल, भव और भाव पंच प्रकार सें परावर्तन करता यह जीव संसार में भटकता है। समस्त कर्मो में एक मोह कर्म ही सुभट है। विभाव परिणति में निरत असावधान जीव की चतुर्गत अखाडें में पछाड देता है और अगर यह जीव भेद विज्ञान की ताल ठोककर सावधान रहता है, तो मोहनीय कर्म परितः घूमतः रहता है। पुरुषाथर्ी महासुभट जीव का बाल भी बांका करने में सक्षम नहीं रहता।

मोह महारिपु से बचो, चतुर्गति दुख मूल।
सन्मति सम्यकृ भाव से, शिव सुख हो अनुकूल।।

(१) ओम शान्ति *

.३५.

दुसरी ढाल

मिथ्या दर्शन ज्ञान सह मिथ्या चरित वखान।
सोच समझ इनको तजो, तो सुख मिले जहान।

संसार परिभ्रमण का कारण

ऐसे मिथ्या दृग ज्ञान चर्ण् वश भ्रमत भरत दुःख जन्म मर्ण्।
तातें इनकों तलिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहुं बखान।। १।।

अन्वयार्थ - (ऐसे) इस प्रकार से संसारी जीव (मिथ्या दृग ज्ञान चूर्ण) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचरित्र (वश भ्रमत जन्म मरण दुःख भरत) के वशी भूत हो संसार में भ्रमण करते हुये जन्म- मरण के दुःख सहन कर रहे है (तातें) इसलिये (सुजान इनको तजिये) हे सज्जन पुरुषो। इनको (मिथ्यादर्शन , मिथ्याज्ञान, मिथ्या चारित्र को) भली भाँति जानकर सर्वथा त्याग करो। (तिन संक्षेप बखात कहूॅ सुनिये) उनका संक्षेप में वण्रान करता हू, आप अच्छी तरह से सुनो

भावार्थ -चारों गति रुप संसार में विभ्ांव परिणति में परिणत यह जीव अनादिकाल से स्व स्वरुप को भूला हुआ, मिथ्या दर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचरित्र के बश होकर चारों गति, चौरसी लाख योतियों में निरन्तर भ्रमण कर जन्म - मरण के असहय दुःखो को सहन करता आ रहा है।

हे ज्ञानी जनो। जन्म मरण की असहय वेदना कराने वाले, विभाव परिणति में रखने वाले, संसार समुद्र में गोता लगवानेवाले जो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्या चरित्र है, उन्हें जैसे बने तैसे भली प्रकार जानकर उसी क्षण हमेशा कोविमोचन कर दो, तभी मिमल सकेंगे सुख की श्वांस अपने आप में। यह जो संसार के कारण मिथ्यादर्शन , ज्ञान, चरित्र है उनकीं संक्षेप में (आगम प्रमाण) कुछ व्याख्या करता हॅू उनको अच्छी तरह सुन समझ कर सावचेत हो जाओ।

.३६.

प्रश्न १. संसार परिभ्रमण का मूल कारण क्या हैं ?
उत्तर - मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचरित्र इन तिंनों की एकता संसार परिभ्रमण का मूल कारण है।

प्रश्न २. मिथ्या किसे कहते है ?
उत्तर - झुठ को मिथ्या कहते है अर्थात जो वस्तू जैसी है उसे उस रुप में न समझकर अन्य रुप से ग्रहण करना मिथ्या कहलाता है।

प्रश्न ३. जीव संसार में परिभ्रमण किस प्रकार करता है ?
उत्तर - यह जीव द्रव्य क्षेत्र काल भव और भाव रुप पंच परावर्तन करता हुआ चतुर्गतियों में पकरभ्रमण करता है।

प्रश्न ४. जीव दु:खी क्यों है ?
उत्तर - मिथ्यात्व एव कषायों के कारण जीव दु:खी है।

प्रश्न ५. जन्म और मरण किसे कहते है ?
उत्तर - चार गति चौरासी लाख योनियों में विभव व्यत्र्जन पर्याय धारण करना जन्म कहलाता है।

आयु कर्म समाप्त होने पर वर्तमान पर्यायों को छोड कर अन्य पर्याय में गमन करना मरण कहलाता है।

आयु एवं गति नामकर्म के उदय से शरीर रचना के साथ योनिभूत स्थान में उत्पन्न हो जाना, जन्म और आयु के अवसान में पर्याय काछूटना देहावसान या मरण कहलाता है। जैसे-मॉ के उदर से जन्म होना और आयु पूर्ण् हो जाने पर मरण होना।

प्रश्न ६. जीव का जन्म मरण होता है क्या ?
उत्तर - शुध्द द्रवय एवं शुध्द पर्याय दृष्टी से जीव का जन्म - मरण नहीं होता परन्तु अशुध्द द्रव्य एवं अशुध्द पर्याय दृष्टी से जीव का जन्म -मरण होता है।

प्रश्न ७. मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र हेय है या उपादेय भी ?
उत्तर - मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र सर्वथा हेय अर्थात त्यागने योग्य ही है, जैसे-अग्नि का काण जलाने वाला ही होता है, इसी प्रकार इन तीनों का अंशमात्र भी संसार में डुबोने वाला ही है इसलिए ये तीनों किसी तरह भी उपादेय नहीं है।

अगृहीत मिथ्यात्व और जीव का स्वरुप

जिवादी प्रयोजन भूत तत्व सरधै तिन मॉहि विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रुप, बिन मूरति चिन मूरति अनूप।। २।।

अन्वयार्थ - (जीवादि तत्व प्रयोजन भूत) जी व आदि तत्व प्रयोजन अर्थात श्रेयस्कर है, (तिन मॉहि विपर्यत्व सरधै) इस जीव न` उन तत्वो में विपरीत श्रध्दान किया है (चेतन को है उपयोग रुप) जीव का लक्ष्मण उपयोग रुप है (अनूप चिन्मूरत विन मूरति) जाव उपमा रहित है, चैतन्य मूर्ति एव अमूर्तिक है।

भावार्थ - संसारमें अनन्त पदरर्थोके बीच जीव, अजीव, आस्त्रव बन्ध, संवर निर्जरा एवं मोक्ष ये सातों तत्व प्रयोजन भूत है। इनके यथार्थ स्वरुप (जैसा का तैसा) की न समझकर अनादिकाल से विपरीत श्रध्दान करके यह जीव मिथ्यात्व के पथ पर आसीन है। चेतन अर्थात आत्मा ज्ञानोपयोग एवं दर्शनोपयोग वाला है। चित चमत्कार, अमूर्तिक, ज्ञान धन उपमातीत , अनन्त गुणों का पुज्ज है, परन्तू हमने आज तक ऐसे जीव तत्व के यथार्थ स्वरुप को समझा ही नहीं है, उपादेय तत्वों में विचरण किया ही नहीं।

प्रश्न१. मिथ्यादर्शन किसे कहते है ?
उत्तर - सप्त तत्व के अथवा वस्तू स्वरुप के विपरीत श्रध्दान को मिथ्या दर्शन कहते है।

प्रश्न २. तत्व किसे कहते है?
उत्तर - वस्तू के यथार्थ स्वरुप (सार)को तत्व कहते है।

प्रश्न ३. तत्व कितने होते हे?
उत्तर - तत्व सात होते है - जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्षा

प्रश्न ४. इन सात तत्वों में ज्ञेय , ध्येय, हेय कौन -कौन है ?
उत्तर - सामान्यतया सभी तत्व ज्ञेय है , स्व शुध्द जीव तत्व ध्येय है, अस्त्रव, बंध तत्व हेय है, संवर निर्जरा एक देश उपादेय है एवं मोक्ष पूर्ण उपादेय है।

प्रश्न ५. तत्वों के स्वरुप के विषयमें मिथ्यात्वी जीव की मान्यता ?
उत्तर - अनादिकाल से आज तक इस मिथ्यात्वी जीव ने तत्वों के यथार्थ स्वरुप को न समझकर विपरीत स्वरुप को ही वास्तविक स्वरुप माना हे।

प्रश्न ६. जीव कास्वरुप कैसा है ?
उत्तर - जीव उपयोगमयी, अमूर्तिक, चैतन्य, अनन्त गुणों का पुज्य ,उपमातीत है।

अन्यथा श्रध्दान

पुद्गल नभ धर्म, अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करें देह में निज पिछान।। ३।।

अन्वयार्थ - (पुद्गल धर्म अधर्म नभ काल) पुद्गल, धर्म ,अधर्म, आकाश, काल (इनतै जीव चाल न्यारी है) इन पुद्गल आदि पांच द्रव्यों से जीव का स्वरुप अत्यन्त भिन्न है (ताकी न जान विपरीत मान करि) ताको अर्थात इस जीव के त्रिकाल स्वरुप कोन जानकर उससे विपरीत (यह अज्ञानी जीव) (देह में निज पिछान करें) शरीर में आत्म स्वरुप मानता है।

भावार्थ - यह जीव अपने स्वरुप को भूलकर आपने आपको शरीर रुप व शरीर को आप रुप मानता है। पुद्गल , धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पांचों द्रव्य ज्ञानादि गुणों से रहित है और जीव ज्ञानादि गुणोंसे सहीत टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभावी है ऐसा न मानकर अनादि काल से इससे विपरीत मानता चला आ रहा है, इसी कारण सांसार समुद्र में गोता खा रहा है। यदि अभी भी अपनी भूल नहीं सुधारी, वस्तू स्वरुप को यथावत नहीं माना तो दु:खो का अन्त होना असम्भव है।

प्रश्न १. क्या जीव का स्वरुप पुद्गल आदि से भिन्न है ?

उत्तर - हॉ लेकिन मिथ्यादृष्टि जीव, जीव के अरुपी ज्ञायक स्वभाव को न जानकर शरीर को ही जीव मानता है।

प्रश्न २. पुद्गल आदि पांचों द्रव्य अजीव है क्या ?
उत्तर - पुद्गल , धर्म, अधर्म , आकाश और काल ये पांच अजीव तत्व के ही प्रति भेद है, अत: इनमें चेतनपने का पूण्रातया अभाव है।

प्रश्न ३. क्या जीव द्रव्य से पुद्गल द्रव्य का कोई सम्बन्धं् नहीं है ?

उत्तर - स्व चतुष्टय एवं स्वभाव की अपेक्षा से जीव और पुद्‌गल द्रव्य का कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु निमित्त नफमित्तिक एवं विभाव की अपेक्षा से जीव और पुद्‌गल द्रव्य का सम्बध्द आगम में बताया गया है।

प्रश्न ४.जीव का विशेष गुण कौन सा है ?
उत्तर - जीव तत्व के अनन्त गुणों में से एक ज्ञान गुण ही विशेष गुण है इसी के कारण पुद्‌गल आदि अजीव तत्वों से उसकी भिन्नता परिलक्षित होती है।

प्रश्न ५. अजीवादी तत्वों में ज्ञान गुण नहीं पाया जाता है क्या ?
उत्तर - पुद्‌गल, धर्म, अधर्म ,आकाश एवं काल में सर्वथा चैतन्य गुण का अभाव होने से उनमें ज्ञान गुण का अभैव पाया जाता है।

मिथ्यादृष्टी जीव की मान्यता

मैं सुखी दु:खी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरुप सुभग मूरख प्रवीन।। ४।।

अन्वयार्थ - (मैं सुखों दुखो मैं रंक राव) मैं सुखी हूँ मैं दुखी हूं, मै गरीब हूं, मै राजा हूं, (मेरे धन गृह गोधन प्रभाव) मैंधनी हूं, मैं घरवाला हूं , मेरे गोधन आदि है, मैं प्रभावशाली हूं, (मेरे सुत तिय मैं सबल दीन) मेरे लडके हैं मेरी स्त्री है, मैं बलशाली हूं, मैं बेलहीन हूं (बेरुप सुभग मूरख प्रबीन) मैं कुरुप हूं, मैंसुन्दर हूं, मैं चतूर हूं।

भावार्थ - अनादि काल से चली आ रही मिथ्या संतती के कारण यह जीव अपने यथार्थ स्वरुप को न समझ ाकर विकारी भाव अर्थात् राग-द्वेष के कारण उत्पन्न हुई विभाव रुप संयोगी पर्यायीं को अपना स्वरुप मानता आ रहा है।

कभी अपने आपको सुखी, दु:खी रंक राजा मानता है, कभी घर धन गोधन आदि से अपने आपको प्रभावशाली मानता, कभी कहता है कि पुत्र, पुत्री, स्त्री, मित्र मेरे है, मैं बलवान हूं, मैं दीन हूं , मैंकरुप हूं, मैं सुन्दर हूं, मै मुरख हूं , एवं चतूर हूं इत्यादी अनेकों प्रकार विपरीत स्वरुप अपने आपको मानता है। कमौदय रहित ज्ञायक स्वभाव की निश्चल श्रध्दा नहीं करता है।

प्रश्न १. धन, घर, स्त्री, पूत्र आदि को अपना मानने वाला कौन है ?
उत्तर - धन, वैभव, घर, स्त्री, पुत्र आदि को अपना मानने वाला मोही, अज्ञानी एवं बहिरात्मा है।

प्रश्न २. मिथ्यादृष्टि अपने आपको कैसा मानता है ?
उत्तर - मिथ्यादृष्टि मोह के संयोग से अपने आपको सुखी, दु:खी, रंक एवं राजा आदी मानता है। कर्मोदय जन्य दशा रुप दीन , कुरुप, सुन्दर, मूर्ख, चतूर आदि अनेक रुप मानता है, जो जीव का ज्ञायक स्वरुप है वह समझाने पर भी।समझ नहीं पाता।

प्रश्न ३. जीव तत्व की भूल किसे कहते है ?
उत्तर - जीव को ज्ञायक स्वभावी नमानकर रांगी, द्वेषी , मोही, मानता यही जीव तत्व की भूल है।

प्रश्न ४. मै सुखी हूं, दूखी हूं यह मानना भी जीव तत्व की भूल है क्या ?
उत्तर - जीव तो ज्ञाता दृष्टा मात्र है सुख और दुख की कल्पना इन्द्रिय और मन कें सहयोंग का कार्य है, अत: अपने आपको सुखी, दु:खी मानना जीव तत्व की भूल है।

प्रश्न ५. सुख तो आत्मा का स्वभाव है भूल में क्यों लिया ?
उत्तर - क्षायिक सुख आत्मा का स्वभाव है, इन्द्रिय जन्य सुख नहीं। यहाँ इन्द्रिय जन्य सुख की बात है।

प्रश्न ६. अपने आपको धनी प्रभावशाली आदि मानने से क्या हानि है ?
उत्तर - अपने आपको धनी प्रभावशाली आदि माननेउपर मान कषाय की पुष्टि होती है। आत्मा धन वैभव से सर्वथा रहित अनन्त गुणों से विभूषित है।

अजीव और आश्रव का विपरीत श्रध्दान

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिन ही की सेवत गिनत चैन।। ५ ।।

अन्वायार्थ - (तन उपजत अपनी उपज जान) शरीर की उत्पत्ती से अपनी उत्पत्ती मानना, (तन नशत आपको नाश मान) तन के विनाश से अपना विनाश मानना (रागादि प्रकट जे दुः,ख देन) रागद्वेष आदि स्पष्ट रुप से दुःख देने वाले है (तिनही को सेवत गिनत चैन) (परन्तु यह अज्ञानी जीव) उन राग-द्वेष आदि को ही सेवन करने में आनंन्द मानता है।

भावार्थ - कुसंस्कार एवं मिथ्या परिणति के कारण यह जीव शरीर के निर्माण से अपना निर्माण, शरीर के विनाश से अपना विनाश मानता है। क्रोधादी कषायें हिंसादि पाप, राग-द्वेष आदि सभी स्पष्ट रुप से दुःख देने वाले है, परन्तु यह अज्ञानी जीव विभाव परिणति के कारण इन विषय कषायें को सेवन करने में आनन्द का अनुभव करता है। जैसे- कुत्ता सुखी हडडी से यह रस निकले हुए खून के आस्वादन से यह मानता है कि हडडी से यह रस निकल रहा है, ठीक इसी प्रकारमिथ्यादृष्टि जीव विषय कषायों से उत्पन्न क्षणिक इन्द्रिय सुखाभास में आन- द मानता है।

प्रश्न१. अजीव तत्व की भूल किसे कहते है ?
उत्तर - अजीव सर्वथा अचेतन एवं जीव द्रव्य से सर्वथा भिन्न है परन्तू फिर भी उसे जीव द्रव्य मय मानना, यह अजीव तत्व की भूल है।

प्रश्न २. मिथ्यादृष्टि जीव अपना जन्म मरण मानता है क्या ?
उत्तर - मिथ्यादृष्टि जीव शररी के उत्पन्न होते ही अपना जन्म एवं शरीर के छुट जाने पर मरण (अपना विनाश) मानता है।

प्रश्न ३. मिथ्यादृष्टि जीव आस्त्रव को कैसा मानता है ?
उत्तर - आस्त्रव दुःखो को ही देने वाले है परन्तु यह अज्ञानी जीव आस्त्रव रुप राग - द्वेषादि को सुख दुःखदायक मानकर सेवन करता है।

प्रश्न ४. मिथ्यादृष्टि जीव आनन्द किसमें मानता है ?
उत्तर - अनन्त दुःखों के कारण भूत जो राग द्वेष है उनको ही आनन्द दायक मानकर सेवन करता है।

प्रश्न ५. राग-द्वेष किसे कहते है ?
उत्तर - इन्द्रियाधीन इष्ट वस्तू के प्रति घृणा को द्वेष कहते है।

प्रश्न ६. राग, द्वेष किसे कहते है ?

उत्तर - राग, और द्वेष दोनों ही समस्त दु:ख के मूल है। इन दोनों का अविनाभावी सम्बन्ध है। एक वस्तू से राग और एक से द्वेष सहज रुप में ही दृष्टिगत होता है।

सामान्य दृष्टि से देखने पर राग सुखद एवं द्वेष दु:खद प्रतीत होता है परन्तू अध्यात्मिक दृष्टि में विषय कषाय से उत्पन्न इन्द्रिय जन्य राग भी दु:ख रुप ही है।

प्रश्न ७. राग द्वेष की जीव क्यों नहीं छोडता ?
उत्तर - अनादि काल से यह जीव काम भ्ैाग आदि में ही आनन्द मानता आया है, आत्मा के शुध्द चैतन्य स्वभाव को समझने का प्रयत्न ही नहीं किया है, इसिलिए राग द्वेष को नहीं छोड पाता।

प्रश्न ८. राग को तो मोक्ष का कारण कहा है ?
उत्तर - राग के आचार्यो ने दो भ्ेंद किये है प्रशस्तऔर अप्रशस्त। शुध्दात्म स्वरुप, देच शास्त्र गुरु एवं धर्म के प्रति जो शुभ राग होता है उसे प्रशस्त राग कहते है और इसी को नैगम नय की अपेक्षा परम्परा से मोक्ष सुख का कारण बताया है। वास्त्व में राग का अभाव ही साक्षात् मोक्ष सुख का कारण है।

बंध और संवर तत्व का विपरीत श्रध्दान

शुभ अशुभ बंध के फल मेंझार, रति अरति करें निज पद विसार।
आतम हित हेतू विराग ज्ञान, ते लखें आपको कष्ट दान।। ६।।

अन्वयार्थ - (निज पद विसार) मिथ्यादृष्टि जीव अपने त्रिकालो ज्ञायक स्वरुपको भूलकर (बंध के शुभ अशुभ फल मेंझार) शुभ अशुभ कमं बंध के फल में (रति अरति करें) शुभ बंध में राग और अशुभ बंध में द्वेष करता है , (आतम हित हेतु .विराग ज्ञान) आत्म हित का कारण वैराग्य औश्र ज्ञान है, (ते आपको कष्ट दान लखे) उन वैराग्य और ज्ञान को स्वयं के लिए कष्ट देने वाला मानता है।

भावार्थ - अपने ज्ञाता दृष्टा निर्वाध स्वभाव से विमुख होकर, शुंभ कर्मो के बंध में राग, अशुभ कर्मो के बंध में द्वेष करता है। अपने कर्तव्य से विमुख , हेय उपादेय ज्ञान से रहित सच्चे आतम सुखके कारण वैराग्य और ज्ञान को कष्ट देने वाले मानता है , इस प्रकार बंध और संवर तत्व में अनादि काल से यह अज्ञानी जीव हेयोपादेयता भूलकर भवसागर मे ं गोता खा रहा है और जब तक वस्तू के यथार्थ स्वरुप का आश्रय नहीं लेगा तब तक भटकता हि रहेगा।

प्रश्न १. बंध तत्व का विपरीत श्रध्दान किसे कहते है ?
उत्तर - कर्म बंध संसार परिभ्रमण का कारण है उसे मोक्ष सुख का कारण मानना यह बंध तत्व की भूल है।

प्रश्न २. शुभ बंध कैसे होता है?
उत्तर - दान, पूजा, दया आदि शुभ परिणामों से शुभ कर्मो का बंध होता है।

प्रश्न ३. अशुभ कर्मो का बंध कैसे होता है ?
उत्तर - कषाय , पाप , विद्वेष आदि बुरी भगवानाओ से अशुभ कर्मो का बंध होतो है।

प्रश्न ४. शुभाशुभ कर्मो का फल क्या है ?
उत्तर - शुभ कर्मो के फल से राजा, महाराजा, देव, इन्द्र श्रावक एवं मुनिराज जैसे श्रेष्ठ पदों की प्रप्ति होती है, पाप कर्म के फल से यह जीव नरक पशु योनी में जाकर तथा दीन, दरिद्री , रोगी, कोढी, कलंकी आदि पर्यायों को प्राप्त होता है।

प्रश्न ५. शुभ एवं अशुभ कर्मो में लीन कौन रहता है ?

उत्तर - आश्रव एवं बंध तत्व के यथार्थ स्वरुप को न जानने वाला अज्ञानी
जीव अशुभ को बुंरा एवं शुभ को अच्छा मानकर उसमें लीन रहता है। ज्ञानी जीव तो दोनों प्रकार के कर्मो को संसार का कारण मानकर संवर तत्व ही उपादेय मानता उत्तर - आश्रव एवं बंध तत्व के यथार्थ स्वरुप को न जानने वाला अज्ञानी है।

प्रश्न ६. क्या शुभाशुभ दोनों प्रकार का कर्म बन्ध संसार परिभ्रमण का ही कारण है ?

उत्तर - शुभाशुभ दोनों प्रकार का कर्म बन्ध जब तक होता रहेगा तब तक संसार में मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अत: दोनों प्रकार का कर्म बन्ध संसार परिभ्रमण का कारण है परन्तु तीर्थंकर प्रकृति आदि कुछ ऐसे भी कर्म है जिनके बंध के अनन्तर नियम रुप से अनन्त चतुष्टय एवं मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। इस अपेक्षा से मोक्ष मार्ग के अनुरुप शुभ प्रकृतियों के बंध को परम्परा से केवल ज्ञानादि विभूति का कारण कहा है।

प्रश्न ७. संवर तत्व की भूल किसे कहते है ?
उत्तर - विशुध्द वीतराग भावों के साथ संसार शरीर भोगों से पूर्ण विरक्ति रुप ज्ञान ही जीव का परम हितैषी है, परन्तु उसे कष्टप्रद मानना ही संवर तत्व का विपरीत श्रध्दान है।

प्रश्न ८. आत्महित के कारण कौन है ?
उत्तर - आत्म हित के वास्तविक कारण वैराग्य और ज्ञान है।

निर्जरा एवं मोक्ष का विपरित श्रध्दान

रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरुप निराकुलता न जोय।
याही प्रतिती जुत कछुक ज्ञान , सो सुखदायक अज्ञान जान।। ७।।

अन्वयार्थ - (निज शक्ति खोय चाह न रोके) मिथ्या दृष्टि जीव स्वयं की शक्ति को भूलकर विषयों की चाह को नहीं रोकता, (शिवरुप निराकुलता न जोय) तथा मोक्ष के स्वरुप को निराकूलतामय नहीं मानता (याही प्रतीती जुत कछुक ज्ञान) इस प्रकार विपरी त श्रध्दान सहित जो कुछ भी ज्ञान है, (सो दु:खदायक अज्ञान जान)वह ज्ञान दु:खों को देने वाला अज्ञान ही है ऐसा जानो।

भावार्थ - मिथ्यात्व की कुसंगती से यह जीव अनादिकाल से निज शक्कित को भूलकर विषय कषायों की इच्छा को नहीं रोक पा रहा है, इसी से निर्जरा तत्व के विषय में मूल में भूल बैठी हुई है।

मोक्ष अवस्था में जीव को याथार्थ सुख एवं परमानन्द की प्राप्ती होती है, परन्तु अगृहीत मिथ्यादृष्टि जीव मोक्ष में भी निराकुलता नहीं मानता। कहतहा है मोक्ष जाकर भी पुन: जन्म मरण होता है। वहां पर भी इच्छाए रहती है यह मोक्ष त्तव के विषय में मिथ्यादृष्टि जीव की मूल में भूल बैठी है।

इस प्रकार मूलभूत सप्त तत्वों के विषय में अनादि काल से चली आ रही जो विपरीत श्रध्दा है, वही अगृहीत मिथ्याज्ञान है। इस मिथ्याज्ञान का विमोचन किये बिना ज्ञानानन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

प्रश्न १. निर्जरा तत्व की भूल किसे कहते है ?
उत्तर - अज्ञानता वश यह जीव मन और इन्द्रिय की गुलामी में जीकर ही कर्मो की छिपाना चाहता है यही निर्जरा तत्व की भूल है।

प्रश्न २. चाह किसे कहते है ?
उत्तर - इन्द्रिय एवं मन से उत्पन्न संसार वर्धक इच्छाओं को चाह कहते है।

प्रश्न ३. कौन सी चाह को अभी तक नहीं रोका ?
उत्तर - मिथ्यात्वी जीव ने अपनी ज्ञान दर्शन शक्ती का सदुपयोग नही करके विषय कषायों की चाह नहीं रोकी।

.४९.

प्रश्न ४. मोक्ष का स्वरुप अज्ञानी जीव कैसा मानता है ?
उत्तर - अज्ञानी जीव मोक्ष के स्वरुप को दु:ख एवं आकुलता से सहित मानता है।

प्रश्न ५. याही प्रतिती का क्या अभिप्राय है ?
उत्तर - मिथ्या श्रध्दान के अनुरुप जानना याही प्रतिती का अभिप्राय है।

प्रश्न ६. अज्ञान दु:ख का कारण क्यों है ?
उत्तर - अज्ञान के कारण यथार्थ वस्तु स्वरुप समझ में नहीं आता और विषय वासनादि विपरीत स्वभाव में आनन्द मानता हुआ यह जीव दुर्गतका भजन बन जाता है अत:अज्ञान दु:खो का मूल कारण है।

प्रश्न ७. अगृहीत मिथ्या ज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर - जीवादि सप्त तत्वों को विपरीत रुप से जानने को मिथ्या ज्ञान कहते है।

प्रश्न ८. जीवादि सप्त तत्वों को विपरीत कैसे जानता है ?
उत्तर - (१) जीव अजीव को अभेद रुप जानकर जीव को चैतन्य स्वरुप न मानकर रागी-द्वेषी शरीर मय मानता है।
(२) अजीव को जड रुप न मानकर जीव रुप या सुख दु:ख देने वाला मानता है।
(३) आश्रव को दु:खद संसार का कारण न मानकर सुख प्रद मोक्ष का कारण मानता है।

.५०.

(४) बंध की संसार बेडी रुप न मानकर हितकारी मानता है।
(५) संवर को आत्म हितैषी न समझकर राग-द्वेष में लीन रहता है।
(६) निर्जरा को मोक्ष का कारण मानकर भ्रान्तियों में निमग्न रहता है।
(७) मोक्ष को सर्व कर्मो से मुक्त अनन्त गुण एवं आनन्द मय न मानकर आकुलता मय दु:खद मानता है।

अगृहीत मिथ्या चरित्त।

इन जुत विषययनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्या चरित्त।
यों मिथ्या त्वदि निसर्ग जेह, अत जे गृहीत सुनिये सुतेह।। ८।।

अन्वयार्थ - (चिरकाल से यह जीव) (इन जूत विषयानि में जी प्रवृत्त) इन मिथ्या दर्शन एवं मिथ्या ज्ञान के साथ पांचो इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति करता है , (ताको मिथ्याचरित्त जानो) उसको मिथ्याचारित्त कहते है, (यों मिथ्यात्वादि) इस प्रकार अगृहीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र (निसर्ग जेह) जो स्वभाव से ही जीव के साथ है, उनका वर्णन हुआ। (अब जे गृहीत सुनिये सुतेह) आगे जो पर के उपदेश से होने वाले गृहीत मिथ्यादर्शन, ज्ञान एवं चरित्र है उनका विवेचन किया जा रहा है।

भावार्थ - अगृहीत मिथ्यादर्शन एवं मिथ्याज्ञान के साथ जीव स्वयं को भूलकर पर में एकत्व बुध्दी करके पांचो इन्द्रियों के विषय भोगों में जो आसक्ति पूर्वक प्रवृत्ति कर रहा है वही अगृहीत मिथ्या चारित्र है।

.५१.

इस प्रकार स्वभाव से ही अनाादि काल से प्रचलित संसार सागर में गोता खिलाने वाले अगृहीत मिथ्यादर्शन एवं मिथ्याचारीत्र की विवेचना हूई, अब आगे अगृहीत मिथ्यात्वके प्रभाव से होने वाले गृहीत अर्थात पर उपदेश के निमित्त से होने वाले गृहीत मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चरित्र का वर्णन किया जायगा।

प्रश्न १. मिथ्याचरित्र किसे कहते है ?
उत्तर - मक्षोमार्ग एवं नैतिकता के विपरीत आचरण को मिथ्याचरित्र कहते है।

प्रश्न २. मिथ्ययाचारित्र का फल क्या है ?
उत्तर - मिथ्या चारित्र का फल अनन्त दु:खा रुप सयंसार सागर में गोते खाना है।

प्रश्न ३. अगृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते है ?
उत्तर - मिथ्यादर्शन ज्ञान सहित विषयासक्ति को अगृहीत मिथ्याचारित्र कहते है।

प्रश्न ४. विषयासक्ती किसे कहते है ?
उत्तर - पांचो अन्द्रिय के विषयों में विशेष लम्पटता को विषयासक्ति कहते है।

प्रश्न ५. पांचों इन्द्रियों मे मिथ्यात्वी जीव किस प्रकार आसक्त रहता है ?
उत्तर - (१) स्पर्शन इन्द्रिय लम्पटी बनकर विषय भोगों में आसक्त होकर अपने आपको खो बैठता है। जैसे- हाथी।

(२) रसना इन्द्रिय लम्पटी बनकर अनेकों प्रकार के व्यत्र्जनों के रसास्वादन में भक्ष्याभक्ष्य का विचार न कर अपने आपको भूल जाता है प्राण खो बैठता है। जैसे-मछली।

(३) घ्राणेद्रिय के लम्पटी बनकर अनेकों प्रकार के सुगन्धित तेल फुलेलों के सूघने में आनन्द मानता है। यहा तक कि शरीर का भी परित्याग करना पडता है। जैसे - भौरा।

(४) चक्षु इन्द्रिय के लम्पटी मनोहर अनेकों प्रकार के रंग विरंगे पदार्थो को देखने में इष्ट अनिष्ट बुध्दि कर मस्त हो जाता है। रागी-द्वेषी बनता है। प्राण तक खो बैठता है। जैसे - पतंगा।

(५) कर्णेन्द्रिय के लम्पटी स्वयं को भूलकर विभिन्न राग - रागनियों में मसेही कर्तव्य हीन हो जाता है, जान से हाथ तक धो बैठता है। जैसे इ हिरण।

प्रश्न ६. इन्द्रिय विषय लम्पटता से क्या हानि है ?
उत्तर - जब तक जीव इन्द्रिय विषय लम्पटी रहता है तब तक निज स्वरुप का रसास्वादन नहीं कर पाता और न याथार्थ सुख शान्ती का ही अनुभव करता है।

प्रश्न ७. अगृहीत मिथ्यात्व किसे कहते है ?
उत्तर - बिना किसी के उपदेश सुने वस्तु स्वरुप के प्रति जीव को जो अनादिकाल से विपरीत मान्यता है, उसी को अगृहीत मिथ्यात्व कहते है।

प्रश्न ८. निसर्गज किसे कहते है ?
उत्तर - स्वभाव से ही उत्पन्न बात को निसर्गज कहते है, इसी को अगृहीत कहते है।

गृहीत मिथ्यादर्शन एव कुगुरु

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषें चिर दिर्शन मोह एव।
अन्तर रागादिक धरै जेह, बाहर धन अम्बरतें सनेह।। ९।।
धरैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपल नाव।

अन्वयार्थ - (जो कुगुरु, कुदेव, कुधर्म सेव) जो भी जीव खोटे गुरु, खोटे देव एवं खोटे धर्म की सेवा करता है (चिर दर्शन मोह एव पोषे)
(वह) बहुत काल तक दर्शन मोहनीय कर्म का ही पोषण करता है, (जेह अन्तर रागादिक धरें) जो जीव अपने अन्तरंग (मन) में राग-द्वेष धारण किये हुऐ है, और (बाहर धन अम्बरतें सनेह) बाहर में धन , वस्त्र आदि से प्रम रखते

है, (कुलिंग धारें महत भाव लहि) खोटा (लिंग) भेष और महंतपने के भाव को धारण किये हुये (जे कुगूरा जन्म जल उपल नाव)
ये उपयुक्त वर्णित कुगुर है और जन्म रुपी समुद्र से तिरने के लिए पत्थर की नाव के समान है।

भावार्थ - अज्ञान वशात एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि कुलिंगी गुरुओं की सेवा रागी, द्वेषी ,स्त्री आदि से सहित देवों की मान्यता एवं हिंसात्मक धर्म के सेवन से निरन्तर दर्शन मोहनिय कर्म का बंध होता है।

अन्तरंग में राग-द्वेंष,लोभ, क्रोध , मान , माया अदि को धारण किये बाहय मेंं वैभव वस्त्र धनादि से स्नेह रखने वाले मोक्ष मार्ग से विपरीत मिथ्या लिंग (भेष) को धारण किये हुये अपने आप को महान तपस्वी महन्त मानने वाले खोटे गुरु जन्म मरण रुप जल से तिरने के लिये पत्थर की नाव के समान है। पत्थर की नौका स्वय डूबती है और बैठने वाले को भी डुबो ले जाती है। इसी प्रकार कुगुरु भी संसार सागर में स्वयं गोते खाते है और उनके आश्रितों की भी वही दशा होती।

.५४.

प्रश्न १ - कुगुरु, कुदेव, कुधर्म की सेवा से क्या होता है ?
उत्तर - कुगुरु, कुदेव, कुधर्म की सेवा से निरन्तर दर्शन मोहनीय कर्म का बंध होता है।

प्रश्न २ . दर्शन मोह किसे कहते है ?
उत्तर - वस्तू स्वरुप का जो दर्शन (यथार्थ श्रध्दान) न होने दे उसे दर्शन मोह कहते है। वह अष्ट कर्मो में से एक मोहनीय नाम का कर्म है। उस मोहनीय के दो भेद है।

(१) दर्शन मोहनीय (२) चरित्र मोहिनीय।
(१) दर्शन मोह इ स्वरुप प्रतीति का अभाव।
(२) चरित्र मोह इ स्वरुप में स्थिरता का अभाव।

प्रश्न ३. कुगुरु किसे कहते है ?
उत्तर - जिनागम से विपरीत रागी द्वेषी आदम्बर परिग्रह वस्त्रादि में स्नेही मिथ्यावेषी अपने आपको महान मानने वाले को कुगुरु कहते है।

प्रश्न ४. कुगुरु की सेवा भक्ति एवं उपदेश से क्या हानि है।
उत्तर - कुगुरु की सेवा भक्ति एवं उपदेश से संसार सागर में दुख उठाना पडता है।

प्रश्न ५. कुगुरु को उपलनाव की उपमा क्यों दी ?

.५५.

उत्तर - उपलनाव का अर्थ पत्थर है। जिस प्रकार पत्थर की नाव स्वयं पानी में डुब जाती है और जो भी बैठता है वह भी डूब जाता है, ठीक उसी प्रकार खोटे गुरु को भी पत्थर की नाव के समान माना है , जो भी उसके साथ संसार सागर में डुब जायेगाा अत: कुगुरु से बचने के लिए उसे उपलनाव की उपमा दी है।

कुदेव का लक्षण

जे राग द्वेष ममल करी मलीन, वनिता गदादि जुत चिन्ह चीन्ह।
ते हैं कूदेव तिनकी जु सेव, सठ करत न तिन भव भ्रमण छेव।।

अन्वयार्थ - (जे राग द्वेष मल करि मलीन) राग-द्वेष रुपी मल से जो मलीन है (वनिता गदादि जुत चिन्ह चीन्ह) स्त्री गदा आदि जिनके चिन्ह है (ते है कुदेव) वे कूदेव है। (तिनकी जू सेव शठ करत) उन कुदेवों की सेवा शठ-मूर्ख करते है। (तिन भव भ्रमण छेव न करत) उन मूखी का संसार भ्रमण का छेद नहींही सकता।

भावार्थ - जो अपने आपको सर्वज्ञ देव मानते है और राग द्वेष रुपी मल से मलिन है। क्रोध, मान , माया, लोभ , भय, कामादि विकार जिनके समाप्त नहीं हुये है तथा स्त्री गदा आदि अस्त्र - शस्त्र से सहित है, तीर्थंकरों के चिन्ह चतुष्टय आदि जिनके नही है, त्रिशूलादि ही जिनकी पहिचान है, वह सभी कुदेव है। ऐसे कुदेवों की सेवा करने वाले

अज्ञानी प्राणी चार गति चौरसि लाख योनि रुप संसार से जन्म-मरण का उच्छेद नहीं कर सकते, निर्वीकार परम विशुध्द आत्म स्वभाव को प्राप्त नहीं कर सकते।

प्रश्न १. राग द्वेष को मल क्यों कहा है ?

उत्तर - जिस प्रकार मल के स्पर्श से वस्तु अपवित्र हो जाती है, उसी प्रकार राग-द्वेष से परम पवित्र आत्मा अपवित्र हो जाती है, इसलिये राग -द्वेष को मल कहा है।

प्रश्न २. कुदेव किन्हें कहते है?
उत्तर - जन्म, जरा, मृत्यू आदि दोष जिनके समाप्त नहीं हुए है और जो रागी-द्वेषी तथा शस्त्र यादि धारी है। (अपने आपको देव मानते है) वह सभी कुदेव है।

प्रश्न ३. कुदेव की सेवा भक्ति से क्या हानि है ?
उत्तर - कुदेवों की सेवा भक्ति से संसार सागर में भव भवान्तरों पर्यन्त दु:ख उठाना पडता है।

प्रश्न ४. रागद्वेष रुप मल से मलिन कौन जीव होते है ?
उत्तर - संसारी अज्ञानी विभाव भावों में लीन रहने वाले जीव ही रागद्वेषादी मल से मलिन होते है।

प्रश्न ५. सच्चे देव के सच स्त्री होती है क्या ?
उत्तर - सच्चे देव क्या, गुरु के साथ भी स्त्री नहीं होतीा स्त्री रागी विकारी पुरुष रखते है , वीतरागी देव नहीं।

प्रश्न ६. व्यन्तरादि देवों की पूज्य देव माना जाता है क्या ?
उत्तर - व्यन्तरदि देव सच्चे पूज्य देव नही है।

कुधर्म एवं गृहीत मिथ्यादर्शन

रागादि भाव हिंसा समेत , दर्वित त्रस थावर मरण खेत।ा ११।ा
जे क्रिया तिन्हें जानहूं कुधर्म, तिन सरधें जीव लहे अशर्म।
याकू गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान।ा १२।ा

अन्वयार्थ - (रागादि भाव हिंसा समेत) राग द्वेषादि भाव हिंसा सहित एवं (त्रस थावर मारण खेत दर्वित) त्रस तथा स्थावर के घात रुप द्रव्य हिंसा सहित (जेक्रिया तिनें कुधर्म जानहू) जोक्रियायें हैं तिन्हें कुधर्म जानो (तिन सरधैं जीव अअशर्म लहे) उन मिथ्या धर्मादि का श्रध्दान करनेों जीव दुख ही पाताहै (याकू गृहीत मिथ्यात्व जान) इन कुधर्म आदि का श्रध्दा को गृहीत मिथ्या दर्श्रन कहते है , (अब जो गृहीत अज्ञान है सून) आगे जो गृहीत अज्ञान है उसको सुनो।

भावार्थ - जिन क्रियाओं में राग-द्वेष रुप भाव हिंसा एवं त्रस स्थावर के प्राण घात रुप द्रव्य हिंसा होती हो वह सभी क्रियायें अधर्म रुप ही होती है। ऐसी अधर्म रुप हिंसादि क्रियांयो में धर्म माने वाला सच्चा सुख नहीं पा सकता।

धर्म हिंसा में नहीं, अहिंसा में है। जहॉ राग-द्वेष को बढावा दिया जाता है एवं स्थावर तथा त्रस जीवों का घात धर्म के नाम नर किया जाता है, वह कभी भी धर्म नहीं कहा जा सकता है। हिंसा में धर्म मानने वालों को जीवन में कभी भी सुख शान्ति का अनुभव नहीं हो सकता। विषय कषायों में आसक्त खोटे गूरु, रागी-द्वेषी खोटे देव एवं हिंसा सहित कुधर्म पर श्रध्दान करना गृहीत मिथ्यादर्शन है। इस मिथ्यादर्शन के कारा ही अनादि काल से जीव अपने यथार्थ स्वरुप को भूला है।

प्रश्न १. देवी देवताओं पर मूक पशुओं की बलि चढाना धर्म है क्या ?
उत्तर - धर्म क नाम पर किसी भी प्राणी की बलि चढाना महापाप है। ऐसा करने वचाले मोक्ष सुख को नहीं पायेंगे, सदैव संसार सागर में गोते खायेंगे।

प्रश्न २. रागद्वेष आदि भाव हिंसा में धर्म होता है क्या ?
उत्तर - रागद्वेष आदि भाव हिंसा में धर्म नहीं होता।

प्रश्न ३. द्रव्य हिंसा में धर्म होता है क्या ?
उत्तर - त्रस एवं स्थावर जीव की जहॉ हिंसा हो उस क्रिया में धर्म नहीं है।

प्रश्न ४. हिंसा मय धर्म को मानने से क्या हानि है ?
उत्तर - हिंसामय धर्म को मानने से जन्म-मरण के अनन्त दुखो को निरन्तर उठाना पडता है।

प्रश्न ५. गृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते है ?
उत्तर - कुगुरु, कुदेव, एवं कुधर्म के श्रध्दान से जो अन्तरंग में विपरीत मान्यता है उसे गृहीत मिथ्यादर्शन कहते है।

प्रश्न ६. गृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर - कुगुरु, कुदेव एवं कुधर्म के उपदेश को श्रेयस्कर जानने रुप जो ज्ञान है वही गृहीत मिथ्याज्ञान है।

गृहीत मिथ्याज्ञान का लक्षण

एकान्तवाद दूषित समरत विषयादिक पौषक अप्रशस्त।
रागी कुमतिन कृत श्रुताभ्यास, सो है कुबोध बहुदेव त्रास।। १३।।

अन्वयार्थ - (एकान्त्वाद दूषित) एकान्तवाद से दूषित (विषयादिक पोषक) विषय कषाय का पोषण करने वाले (अप्रशस्त समस्त) विषय कषाय को पुष्ट करने वाले जितने भी (रागी कुमतिन कृत श्रुताभ्यास) रागी-द्वेषी,खोटी बुध्दी वालोंके द्वारा रचे शास्त्रो का जो ज्ञान है, (सो कुबोध है बहु त्रास देन) यह ृगृहित मिथ्याज्ञान है तथा महा कष्ट देने वाला है।

भावार्थ - जो मात्र निश्चित या मात्र व्यवहार किसी एक नय के हठाग्रह से जो सर्वथा दूषित है, अनेकान्तात्मक वस्तू स्वरुप की विवेचना से रहित है, विषय कषायोँ के पोषक राग-द्वेष को बढाने वाले है ऐसे रागी द्वेषी मोही मिथ्यात्वी जीवों के द्वारा रचित समस्त शास्त्रों से ज्ञान प्राप्त करना, यही गृहीत मिथ्याज्ञान है और यह मिथ्याज्ञान भव भान्तरों में अनन्त दु:ख देने वाला है, पर में अपनत्व बुध्दि कराकर संसार सागर में गोते खि लाने वाला है।

प्रश्न १. एकान्तवाद किसे कहते है ?
उत्तर - वस्तु में रहने वाले अनेक धर्मो को न मानकर किसी एक धर्म रुप ही वस्तू को मानना एकान्तवाद है, जैसे - आत्मा ज्ञाता ही है, आदमी पिता ही है।

प्रश्न २. एकान्तवाद से क्या हीनि है ?
उत्तर - एकान्त से वस्तू स्वरुप का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, वस्तू का यथार्थ ज्ञान हुये बिना संसार में दुख उठाने पडते है। अत: जैसे भी बने एकान्त रुप भूल से बचे, स्याद्वाद के माध्यम से वस्तू को समझें।

प्रश्न ३. विषय कषाय का पोषण करनेउ वाले कौन शास्त्र है ?

उत्तर - इन्दजाल, कोक शास्त्र, हिंसा में धर्मे बनाने वाले तथा राग-द्वेष का उपदेश देनेवाले आदि संसार को बढाने वाले सभी शास्त्र विषय कषाय का पोषण करने वाले है।

प्रश्न ४. सच्चे शास्त्र की क्या पहचान है ?

उत्तर - जो रागद्वेष रहित वीतरागी दिगम्बराचार्यां द्वारा रचित हो। जिनमें अहिंसामय धर्म एवं रत्नत्रय रुप मोक्षमार्ग ेका उपदेश दिया गया हो तथा रागद्वेष मोह को सर्वथा हेय बताया हो, वही शास्त्र सच्चे शास्त्र है।

प्रश्न ५. क्या कपडे वालों द्वारा रचित शास्त्रे सच्चे शास्त्र नहीं है ?

उत्तर - कपडे वाले अगर आर्ष पध्दति वीतरागी आचार्यो के अनुसार लिखते हे, तो वह मान्य है। आगम विरुघ्द, मात्र एक नय का अवलम्बन लेकर कषाय की पुष्टि करनेवाले शास्त्र सच्चे शास्त्र नहीं है।

गृहीत मिथ्याचरित्र

जो ख्याती लाभ पूजादि चाह, धरी करनि विविध विध देह दाह।
आतम अनात्म के ज्ञान हीन, जे जे करनी तन करन छीन।। १४।।

मिथ्या चारित्र और संसार त्याग का उपदेश

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग।
जग जाल भ्रमण को दुहु त्याग, अब दौलत निज आतम सुपाग।।

अन्वयार्थ - (जो ख्याति लाभ पूजादी चाह धरि) जो (ख्याति) नामवरी लाभ, पूजा प्रतिष्ठादि की मन में चाह करता है (विवीध विध देह दाह धरि) अनेकों प्रकार से शरीर को तपाता है (आतम अनात्म के ज्ञान हीन) आत्मा और शरीर के ज्ञान से शून्य (जे जे करनी तव करन छीन) जितनी भी क्रयायें है वह सभी शरीर को कृश करने वाल ी होती है (ते सब मिथ्या चारित्र त्याग) अज्ञान पूर्वक क्रिया रुप सभी मिथ्याचाीरित्र है उनका त्याग करो(अब आतम के हित पंथ लाग) और आत्मा के हित के मार्ग पर लगो। (जग जाल भ्रमण को त्याग देहु) संसार चक्र में मत फंसो, संसार रुपी जाल के भ्रमण का त्याग करो (दौलत अब निज आतम सुपाग) दौ लतराम जी कहते है कि अब अपनी आत्मा में ही रमो।

भावार्थ - जो अविवेकी मनुष्य अपने स्वभाव को भूलकर संसार में जो भी कार्य करते है उसके अन्दर यश, ख्याती, लाभ अर्थात मेरी प्रशंसा चारों और हो, यह भावना दिन दूनी रात चौगुनी बलवती होती है। अपनी प्रश्ंसा के लिये कठिन - कठिन तप करता है, पर्वत पर बैठकर शरीर को सुखाता है ,एक एक माह, दो-दो माह, छह इ छह माह उपवास करता है, और भी शरीर को कष्ट पहॅुचाने वाली अनेकों क्रियायें करता है, जिन्हे देखकर लोग तपस्वी कहें प्रशंसा करें, जय-जय कसा बोले। भेद विज्ञान से रहित मिथ्या चारित्र का आचरा करता हुआ ऐसा व्यक्ति अनेकों प्रकार के कुतपों के उपरांत भी सम्यक सुख शान्ति का अनुभव नहीं कर पाता। जितनी भी क्रीयायें करता है वह कषाय एवं पापों को क्षय करने वाली न होकर मात्र शरीर को क्षीण करने वाली होती है, जिनका फल भविष्य में सिवाय पश्चातापों के कुछ भी नहीं है।

उपयुक्त ये सभी क्रियायें गृहीत मिथ्याचारित्र कहलाती है। इनका आचरण करने से संसार बेल निरन्तर वृध्दिंगगत होती रहती है। इसलिए संसार बर्धक सभी प्रकार के मिथ्याचारित्र का हमेशा हमेशा के लिए त्याग करें।

पंडीत प्रवर दौलतराम जी कहते है कि हे भव्य आत्मन।

सभी प्रकार के मिथ्यादर्शन , ज्ञान चारित्र एवं सं दृष्टि मोडकर आत्मा का हितैषी सर्वज्ञ प्रणीत जो वीतराग मार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र है उसी में अपने आपको विलीन कर दो तभी यथार्थ अनुभूति सम्भव है जिससे अक्षय अनन्त की प्राप्ति अपने आप में निश्चित है।

प्रश्न १. ख्याति लाभ कि चाह किसे कहते है ?

उत्तर - कोई भी कार्य करते समय लोग मुझे अच्छा कहें, लोंक में मेंरी प्रसिध्दि हो, उसे ख्याति लाभ की भावना कहते है।

प्रश्न २. गृहीत मिथ्या चारित्र किसे कहते है ?
उत्तर - भेद विज्ञान से रहित ख्याति लाभ की चाह से विविध प्रकार से शरीर को कष्ट पहुॅचाने वाले तप तपना, आचरण करना गृहीत मिथ्याचारित्र है।

प्रश्न ३. व्रत, नियम, तप आदि सम्यक चारित्र नहीं है क्या ?
उत्तर इ सम्यग्दर्शन के अभाव में व्रत नियम तप आदि सभी मिथ्याचारित्र कहे जाते है।

प्रश्न ४. तप उपवास आदि के द्वारा शरीर को क्षीण करने से क्या लाभ है ?
उत्तर - मान कषाय के वशीभूत होकर व्रत उपवासों के द्वारा शरीर को क्षीण करने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि यह सब मिथ्याचारित्र के ही अंग है, किन्तु ममत्व रहित तप उपवासादि विषय वासना के दमन एवं गुप्ति समिप्ति पालन में सहायक है।

प्रश्न ५. अगर कोई कषाय में आकर त्याग व्रत करे, नियम ब्रत उपवास करे तो वह सम्यक चारित्र की कोटि में आता है कि नहीं ?

उत्तर - नहीं। किसी का निमित्त पाकर कषाय से कितने भी नियम व्रत उपवास किये जाये सब अधर्म है। केवल शरीर को कष्ट देने वाले है एवं आत्मा के अहितकार मिथ्याचारित्र के ही अंग है।

प्रश्न ६. मिथ्या चारित्र से क्या हानि है ?
उत्तर - मिथ्या चारित्र का पालन करने से देवादि पर्याय में दुख पाकर नरकदि गतियों की दुखं सहन करने पडते है। इसलिये मिथ्या चारित्र परम्परा से कष्टप्रद ही है।

प्रश्न ७. मिथ्या चारित्र का त्याग कैसे हो ?
उत्तर - आत्म हितैषी सम्यग्ज्ञान, चारित्र का परिपालन करने से मिथ्या चारित्र परम्परा से कष्टप्रद ही है।

प्रश्न ८. संसार भ्रमण में दू:ख है क्या ?
उत्तर - हॉ। संसार परिभगमण में जन्म मरण आदि अनेकों प्रकार के अनन्त दु:ख है।

प्रश्न ९. संसार भ्रमण का कारण क्या है ?
उत्तर - संसार भ्रमण का कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र है।

प्रश्न १०. संसार से छुटकर कैसे मिले ?
उत्तर - भेद विज्ञान के द्वारा पर - वस्तुओं से दृष्टि मोढकर स्वात्मगुणो की सहज प्राप्ति से संसार भ्रमण से छुटकारा मिल जायेगा।

दुसरी ढाल का सारांश

चारों गतियों में जन्म मरण करता हुआ यह संसारी प्राणी आपने मिथ्या अभिप्राय, मिथ्याज्ञान एवं असंयम के कारण भटक रहा है, इसलिये श्रध्दान ज्ञान और चरित्र के विपरीताभिनिवेष को भ्ंली भांती जानने के लिये आचार्य संक्षेप में उनका स्वरुप समझाते है। लाोक के अनन्त पदाथ्ंर्ो की जानकारी भी करने से कोई लाभ नहीं किन्तु सर्वज्ञ कथित सप्त तत्वों को ज्ञेय, हेय, उपादेय एवं ध्येय रुप जानना श्रेयस्कर है।

१. लोक के सभी जीव द्रव्य - एक जीव तत्व में गर्भित होते है।
२. अजीव द्रव - अजीव तत्व में।

यह दोनों अखण्ड ध्रुव द्रव्य तत्व है, बाकी आस्त्रव , बंध संवर, निर्जरा और मोक्ष यह पांच तत्व पर्याय तत्व है अत: सभी तत्व ज्ञेय तो हैं किन्तु अहितकार दुखदाई संसार के कारण आस्त्रव और बन्ध ये दो तत्व होय है, त्याज्य है तथा सुखप्रद मोक्ष के कारण संवर और निर्जरा ये दो तत्व एकदेश उपादेय है तथा मोक्ष परिपूर्ण उपादेय है। जीव तत्व को आश्रय अथवा मोक्ष का लक्ष्य बनने से ध्येय है। इस तरह हेय उपादेय बुध्दी से जो तत्व प्रयोजन भूत नहीं है, उनमें तो तन्मय रहते और जो वस्तुत: श्रेयस्कर है उनसे दूर रहते है। यही कारण हुआ कि उल्टी मान्यता में आत्म स्वरुप को न जानकर देह जीव को एकत्व बुध्दि से पौद्गलिक पर्याय में अपनापन माना और नाना कषायों को जन्म दिया।

शरीर की क्षीणता में दुखी, वैषयीक इच्छा में सुखी , रागद्वेषादि प्रत्यक्ष दुखकारी है। उन्ही के सेवन में सुख माना और जो ज्ञान वैराग्य सुख के साधन है उनमें अरुचि रही। इस प्रकार सातों तत्वों की मान्यता में विपरीत श्रध्दान कर खोटे देव, गुरु, एवं धर्म का आश्रय लिया, विषयों के पोषक खोटे शास्त्र कथायें पढता रहा, हिंसादिक अधर्म की क्रियाओं में धर्म माना, एक कहावत है- गुरबेल और नीम पै चढी अर्थात गुरवेल कढवी होती है और नीम का संयोग पाने से औरभी कडवी हो ,जाती है। ऐसे ही अनादि मोही मिथ्यादृष्टि जीव अनादि से मोह में मस्त था और नवीन - नवीन कुसंगति और मिलती गई जिससे अृज्ञान असंयम की दशा में नाना प्रकार का परिभ्रमाण और करना पडा। पं० श्री दौलतराम जी इस ग्रन्थ के रचयिता (कृ पाल श्री गुरु की और से) संबोधित करते है कि अनन्त दुखदाई यह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र को छोडकर अपने श्रेयस्कर मार्ग का अनुसरण करो, जिससे संसार का समस्त जंजाल (जन्म मरण अर्थात चारों गतियों का परिभ्रमण) छुट जायेगा। ये विषय भोग ही दु:ख मूल है अत: उन्हे त्यागकर आत्म स्वरुप में तन्मय होकर मनुष्य जन्म को सफल बनाना चाहिये।

मिथ्या दर्शन ज्ञान अरु, गिथ्या चरित महान।
तीनों भव दु:ख रुप है, इनको तजो सुजान।।

ओम शांति

तिसरी ढाल

सम्यग्दर्शन के बिना, दर्शन रहे अपूर्ण।
दर्श्न से दर्श्न मिले, सद्गुण हों परिपूर्ण।।

सुख एवं द्विविध मोक्षमार्ग

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिना कहिपे।
आकुलता शिव मॉहि न ताते, शिव मग लाग्यो चहिये।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिव, मग सो द्विविध विचारो।
जो सत्यारथ रुप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।। १।।

अन्वयार्थ -(आतम को हित सुख है) आत्मा का हित सुख प्राप्ति में है (सोउसुख आकुलता बिन कहिये) ऐसा सुख आकुलता के अभाव में है (आकुलता शिव मॉहि न) आकुलता मोक्ष के अन्दर नहीं है (ताते शिव मग लाग्यो चहिये) इसलिए मोक्षमार्ग में लगना चाहिये (सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवमग) सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान एवं सम्यक चारित्र इन तीनों की एकता मोक्षमार्ग है (सो द्विविध विचारो) इस मार्ग का विवेचना दो प्रकार से की गई है (जो सत्यारथ रुप सो निश्चय) जो मोक्ष मार्ग यथार्थ (साध्य) रुप है वह निश्चय और (कारण सो व्यवहारो) निश्चय प्राप्ति का जो साधन है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है।

भावार्थ - जीव अनादि काल से अपने हित की खोज करता आ रहा है। स्वर्ग , नगक, पशु, देव आदि पर्यायों में जाकर देख लिया परन्तु अपने हित का मार्ग नही मिला है। इस जीव का हित सच्चे सुख की प्राप्ति में है। उस

सुख का चारों गतियों में अभाव है। चारों गतयों में आकुलता की बहुलता है। सच्चा सुख आकुलता के अभाव में ही सम्भव है। आकुलता का मोक्ष दशा में सर्वथा अभाव है। अतः आत्म हित पिपासु भव्यात्माओं को मोक्ष मार्ग पर चलना चाहिये।

स्व कल्याण की भावना वाले भव्यात्माओं को मन में मोक्ष मार्ग को समझने का उत्साह जाग्रत हो गया होगा। दु:खो का सर्वथा अभाव होना ही मोक्ष है। उस मोक्ष महल तक पहुंचने का मार्ग है सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। इसी रत्नत्रय की एकता को मोक्षमार्ग कहते है। मोक्ष मार्ग तो एक ही है परन्तु उसकी विवेचना दो प्रकार से की गई है - निश्चय एवं व्यवहार।

जो वीतरागमय निर्विकल्प दशा साक्षात मोक्ष मार्ग है उसे निश्चय मोक्षमार्ग कहते है एवं जो शुभोपयोग रुप संसार दशा में आंशिक वीतरागता है वह निश्चय मोक्षमार्ग का कारण है उसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहतू है स सराग शुभोपयोग भी व्यवहार चारित्र है उसे ही व्यवहार मोक्षमार्ग कहते है।

प्रश्न १. आत्मा का हित किसमें है ?
उत्तर - आत्मा का हित सच्चेसुख की अनुभूति में है।

प्रश्न २. आत्म सुख प्रेमी भव्यात्माओं को क्या करना चाहिये ?
उत्तर - आत्म सुख प्रेमी भव्यात्माओं को सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रुप मोक्षमार्ग का अनुगमन करना चाहियें।

प्रश्न ३. सच्चा सुख किसे कहते है ?

उत्तर - आकुलता के अभाव में उत्पन्न अन्तर्मुखी आल्हाद रुप आनन्द को सच्चा सुख कहते है।

प्रश्न ४. स्वयं का आनन्द कैसे मिले ?
उत्तर - राग- द्वेष मोह संकल्प विकल्पों के अभाव में आत्मानुभूति होने पर स्वयं का आनन्द प्राप्त होता है।

प्रश्न ५. आकुलता आदि विभाव भावों का अभाव कहॉ पर है ?
उत्तर - राग-द्वेष रुप आकुलता का सर्वथा अभाव मोक्ष में है।

प्रश्न ६. मोक्ष किसे कहते है ?
उत्तर - समस्त कर्मो से विमुक्त होने का मोक्ष कहते है या आत्म स्वरुप का स्वतन्त्रता ही मोक्ष है।

प्रश्न ७. मोक्ष मार्ग किसे कहते है ?
उत्तर - मोक्ष मार्ग का अर्थ है मोक्ष का उपाय , वह अभेद रत्नत्रय है।

प्रश्न ८. मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है ?
उत्तर - मोक्ष की प्राप्ति सम्यग्दर्शन , ज्ञान, चारित्र रुप मोक्षमार्ग पर चलने से होती है।

प्रश्न ९. मोक्ष दशा तक पहुचने के कितने मार्ग है ?
उत्तर - मोक्ष तक पहुचने का मार्ग तो एक ही है - रत्नत्रय, परन्तु इस रत्नत्रय रुप मोक्षमार्ग का विवेचन निश्चय एवं व्यवहार नय की अपेक्षा दो रुप से किया गया है।

प्रश्न १०. निश्चय रत्नत्रय किसे कहते है ?

उत्तर - जो अभेद र्निविकल्प मोक्ष का साक्षात कारण है वह निश्चय रत्नत्रय है।

प्रश्न ११. व्यवहार रत्नत्रय किसे कहते है ?

उत्तर - जो भेद सविकल्प रत्नत्रय परम्परा से मोक्ष का कारण हो यानि निश्चय रत्नत्रय प्राप्ति का हेतु हो उसे व्यवहार रत्नत्रय कहते है।

प्रश्न १२. व्यवहार मोक्षमार्ग भी उपदेय है क्या ?
उत्तर - निश्चय का कारण होने से प्रारम्भिक भूमिका में व्यवहार मोक्षमार्ग उपादेय ही है।

प्रश्न १३. क्या व्यवहार मोक्षमार्ग के बिना निश्चय मोक्षमार्ग सम्भव है ?
उत्तर - नहीं, जैसे माता पिता के अभाव में पूत्र संभव नहीं, फूल के अभाव में फल संभव नहीं, उसी प्रकार व्यवहार मोक्ष मार्ग के बिना निश्चय मोक्षमार्ग संभव नहीं।

निश्चय रत्नत्रय

पर द्रव्यनतें भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रुप को जान पनों सों, सम्यग्ज्ञान कला है।।
आप रुप में लीन रहे थिर, सम्यकचारित्र्य सोई।
अब व्यवहार मोक्ष मग सुनिये, हेतु नियत को होई।। २।।

अन्वयार्थ - (पर द्रव्यनतें भिन्न) पर वस्तुओं से अत्यन्त भिन्न (आन में) अपने स्वरुप में (रुची) विशेष अभिरुची रखना (भला सम्यक्त्व है) यथार्थ सम्यग्दर्शन है (आप रुप को) अपने यथार्थ स्वरुप का (जान पनो) परिज्ञान करना (सो सम्यग्ज्ञान कला है) वह वास्तविक सम्यग्ज्ञान है (आप रुप में) अपने त्रिकालि स्वरुप में (थिर लीन रहें) निश्चिय रुप से विलीन रहना (सोई सम्यक चारित्र) वह सम्यकचारित्र है (अब) इसके अनन्तर (व्यवहार मोक्षमग) व्यवहार मोक्षमार्ग की विवेचना सुनिये (नियत का हेतु होई) जो यह व्यवहार मोक्ष मार्ग का हेतु कारण है।

भावार्थ - जीव और पुद्गल की विकारी अवस्था रुप अनन्तानन्त वस्तुओं से संसार ओत-प्रोत है। विभाव परिणती से परिणत शरीर और आत्मा को एक मानने वाला एवं इष्ट अनिष्ट की कल्पना में लीन आत्मा बहिरात्मा है। अत: लोक में अवस्थित परिपूर्ण् पर वस्तुओं से विमुख होकर एक मात्र अपने स्वरुप में परिपूर्ण् निश्चल अभिरुची ही सम्यग्दर्शन है।

अज्ञानी प्राप्ती पर वस्तु का ज्ञान करने में अपनी शान्ति का अपव्यय करता हुआ ही अपने आपको ज्ञानी मानता है परन्तु परागमुखी ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं , अपने स्वरुप का जानना ही यथार्थ सम्यग्ज्ञान है, शेष सभी ज्ञान जो मात्र पर की ही खोज में निमग्न है वह मिथ्याज्ञान है।

यह जीव पर में वीलीन हो जाना ही अपना धर्म मानकर अनादि काल से भव समुद्र में गोता खा रहा है, जन्म मरण के दु:ख उठा रहा है। अज्ञानी समझाने पर भी पर को संगति से मुक्त होने को तैयार नहि है। वस्तुत: पर में रमणना ही विभाव परिणितीया मिथ्याचारित्र है और अपने स्वरुप का परिज्ञान कर उसी में तन्मय अर्थात लीन हो जाना (स्थिर हो जाना।) सम्यक चारित्र है।

यह विवेचना निश्चय सम्यकदर्शन , ज्ञान एवं निश्चय सम्यक चारित्र की है। इसके अनन्तर विवेचना उस व्यवहार रत्नत्रय की है जो निश्चय रत्नत्रय को जन्म देने में कारण है। जैसे- बीज के बिना वृक्ष नहीं होता, माता के बिना पूत्र नहीं होता, ठीक उसी प्रकार व्यवहार रत्नत्रय के बिना निश्चय रत्नत्रय नहिं होता। वास्तविकता यह है कि रत्नत्रय अभेद है। निश्चय और व्यवहार के विकल्प अभ्यन्तर-बाहय दृष्टि की अपेक्षा से किये गये है कथन पध्दति की अनेक्षा या कार्य कारण की अपेक्षा से या पात्रो की अपेक्षा से रत्नत्रय को भेदों में बिभाजित किया है।

संक्षिप्त में समझने के लिये निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय पिता और पुत्र की तरह एक समय में ही उत्पन्न होते है।

प्रश्न १. पर द्रव्य कौन कौन से है ?

उत्तर - निजात्म स्वरुप के अतिरिक्त विश्व के जितने भी जीव, पुद्गल आदि छ: द्रव्य है, चाहे वह शरीरादि के रुप में हों, चाहें वह स्त्री, पुत्र, मित्र आदि के रुप में हों, चाहे वह धन वैभवादि के रुप में हों, यह सभी पर द्रव्य है।

प्रश्न २. रुचि किसे कहते है?
उत्तर - किसी भी वस्तू को प्राप्त करने की भावना या उसके प्रति विशेष अनुराग को रुचि कहते है। जैसे किसी मनुष्य के मन में लखपति, करोडपति, अरबपति बनने की विशेष भावना है यही उसकी पैसे के प्रति रुचि है।

प्रश्न ३. निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते है ?
उत्तर - पर पदार्थो से विमुख होकर वस्तू स्वरुप की यथार्थ श्रध्दासहित निजात्म स्वरुप की और विशेष अभिरुचि का होना ही निश्चय सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न ४. अपने स्वरुप को कैसे जाना जाता है ?
उत्तर - अनन्त गुण एवं पर्यायो ये युक्त अखण्ड अविनाशी ज्ञायक स्वभावी मै चैतन्य स्वारुप आत्मा हूॅं। येसा स्वयं के सम्यग्ज्ञान द्वारा स्वयं को जाना जाता है।

प्रश्न ५. निश्चय सम्यग्ज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर - अनन्त गुण एवे अनन्त पर्यायें सहित निजात्म के त्रिकाली स्वरुप एवं वर्तमान अवस्था को यथार्थ रुप से जानना ही निश्चय सम्यग्ज्ञान है।

प्रश्न ६. अपने स्वभाव में जीव कैसे रहते है ?
उत्तर - पर वस्तुओं से विमुख होकर इन्द्रिय विषय आदि कुत्सित वासनाओं का त्याग कर क्रोध, मान, माया, लोभ एवं राग द्वेषादि विकारी भावों से विमुख होकर दर्शन, ज्ञान, सुखदी स्वात्म गुणों में स्थिर अर्थात निमग्न हो जाना ही अपने स्वरुप में लीन रहना है।

प्रश्न ७. निश्चय सम्यक चारित्र किसे कहते है ?
उत्तर - राग-द्वेष आदि विभाव भावों से परिमुक्त होकर मात्र निजात्म स्वरुप में रमण करना या निर्विकल्प होकर ज्ञाता दृष्टा मात्र रहना यही सम्यक चारित्र है।

व्यवहार सम्यग्दर्शन

जीव अजीव तत्व अरु आस्त्रव, बंध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो।।

है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रुप बखानो।
तिनको सुन सामान्य निशेषै, दृिढ प्रतीत उर आनो।। ३ ।।

अन्वयार्थ - (जीव, अजीव, आस्त्रव बंध, संवर,निर्जरा अरु मोक्ष जिन कहे जानो तिनको ज्यों का त्यों सरधानो) जीव, अजीव ,आस्त्रव ,बंध , संवर ,निर्जरा एवं मोक्ष यह सप्त तत्व जिनेन्द्र भगवान ने प्रतिपादीत किये है। इन सातों तत्वों काजैसा का तैसा श्रध्दान करना चाहिये। (है सोई समकित व्यवहारी) इन तत्वों का यथार्थ श्रध्दान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है (अब इन रुपबखानो)अब आगे इन सातों तत्वचों के स्वरुप की विवेचना की जा रही है (तिनको सामान्य विशेष सुन) उन तत्वों के स्वरुप को सामान्य एवं विशै्ाष रुप से सुनकर (उर दृिढ प्रतीत आनो) अपने हृदय में निश्चल श्रध्दान करो।

भावार्थ - वीतराग सवर्ज्ञ एवं हितोपदेशी तीर्थकर भगवान ने वस्तु स्वरुप का प्रतिपादन करते हुये जीव, अजीव, आस्त्रव , बंध, संव निर्जरा मोक्ष इन सात तत्वों केस्वरुप को प्रतिपादित किया है। इन तत्वों के हेयोपादेय रुप से जिस प्रकार आगम में विवेचन है उसी प्रकार से श्रध्दान कर लेना सम्यक्त्व का उपाय है, मोक्ष का कारण है। सभी जीवादी सप्त तत्व ज्ञेय है एवं इनमें आस्त्रव, बंध हेय है तथा संवर, निर्जरा एवं मोक्ष तत्व उपादेय है और निज जिव

ध्येय है। इस प्रकार आगम प्रमाण से तत्वों के प्रति अपने हृदय में यथावत आस्था जमा लेना यही है व्यवहार सम्यग्दर्शन।

अत: इन्ही सप्त तत्वों की विवेचना सामान्य एवं विशेष रुप से तत्वों के स्वरुप को समझकर आत्म जागृति करना ही श्रेयस्कर है।

प्रश्न १. व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते है ?
उत्तर- सप्त तत्वों के यथार्थ श्रध्दान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते है।

प्रश्न २. तत्व किसे कहते है ?
उत्तर- वस्तु के यथार्थ् स्वरुप (सार) को तत्व कहते है।

प्रश्न ३. तत्व कितने होते है ?
उत्तर - तत्व सात होते है।

प्रश्न ४. तत्वों के नाम किस प्रकार है ?
उत्तर - तत्वों के नाम -(१) जीव (२) अजीव (३) आस्त्रव (४)बन्ध (५) संवर (६) निर्जरा (७) मोक्ष।

प्रश्न ५. सात तत्वों में ज्ञेय, हेय, उपादेय एवं ध्येय कौन है ?
उत्तर - -जिवादी सात तत्व ज्ञेय है ,आस्त्रव - बन्ध हेय है तथा संवर निर्जरा , मोक्ष उपादेय है और निज जीव का शुध्द स्वरुप ध्येय है।

गति के भेद, बहिरात्मा और उत्तम अप्तरात्मा का लक्षण

बहिरातम अन्तर आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिने, बहिरातम तत्व मुधा है।।
उत्तम मध्यम जधन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन सुघ उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी।। ४।।

अन्वयार्थ - (बहिरातम अन्तर आतम परमातम जीव त्रिधा है) बहिरात्मा अन्त्रात्मा और परमात्मा के भेद से जीव तीन प्रकार के है। (देह जीव को एक गिने) जो शरीर एवं आत्मा को एकही समझता है (बहिरातम तत्व मुधा) वह बहिरात्मा है,

तत्वज्ञान से विमुख मिथ्यादृष्टि है (उत्तम,मध्यम,जघन, विविध के) उत्तम, मध्यम और जधन्य यह तीन प्रकार के (ज्ञानी, अन्तर आतम) ज्ञानी अन्तरात्मा है (द्विवीध संग बिन सुध उपयोगी) उनमें से अन्तरंग एवं दोनों प्रकार के परिग्रह से मुक्त शुध्दीपयोगी (निज ध्यानी मुनि उत्तम) निज विशुध्दात्म रुप में निमग्न रहने वाले मुनिराज उत्तम अन्तरात्मा है।

भावार्थ- जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रतिपीदत षट् द्रव्य के समूह रुप इस लोक में एकन्द्रिय से प्रचेन्द्रिय पर्यन्त अनन्तानन्त जीव निवासी कर रहे है। उन जीवों की विवेचना अनेक प्रकार से आगम में उल्लिखित है। यहां पर संक्षेप रुप से उनके तीन भेदो की विवेचना की जा रही है।

बहिरात्मा , अन्तरात्मा और परमात्मा के भेद से जीव तीन भगों में विभ्ांजित किये गयें है। इनमें से शरीर और आत्मा में एकत्व बुध्दि रखने वाले जीव बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव है। जो अनादि काल से अपने स्वरुप को न जानकर शरीर को ही अपना स्वरुप समझकर अनादि काल से जन्म -मरण के दु:ख सहन करते हुये संसार सागर में गोता खा रहे हैं।

अन्तरात्मा के तीन भेद है। उत्तम, मध्यम एवं जघन्य यह तीनों प्रकार के अन्तरात्मा अनन्त संसार से विमुख, जन्म - मरण के दु:ख से भ्ंयभीत संसार , शरीर , भागों से विरक्त रहकर निरन्तर यथार्थ वस्तू स्वरुप को प्राप्त करने की भावना में तन्मय रहते है यानि मोक्ष मार्ग पर बढते रहते है।

.७६.

दोनो प्रकार के संग अर्थात चौदह अन्तरंग और दस बाहय इस प्रकार चौवीस प्रकार के परिग्रह से परामुख सविकल्प सभी भावनाओं से विमुक्त सुध्दोपयोग रुपी झूले में निजानन्द रुपी हिलोरे लेने वाली श्रेणी में आरुढ मुनिराज उत्तम अन्तरात्मा है।

प्रश्न १. जीव कितने प्रकार के होते है ?
उत्तर - बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा के भेद से जीव तीन प्रकार के होते है।

प्रश्न २. बहिरात्मा जीव किसे कहते है ?
उत्तर - शरीर और आत्मा को एक मानने वाले जीव को बहिरात्मा कहते है।

प्रश्न ३. अन्तरात्मा किसे कहते है ?
उत्तर - शरीर में रहते हुये उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य संयुक्त अपने अनंत, अखण्ड गुणमय चितस्वरुप को द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नौ कर्मो से भिन्न अनुभव करने वाले जीव को अन्तरात्मा कहते है।

प्रश्न ४. अन्तरात्मा के कितने भेद है ?
उत्तर - उत्तम, मध्यम, एवं जधन्य इस प्रकार इसके तीन भेद है।

प्रश्न ५. उत्तम अन्तरात्मा किसे कहते है?
उत्तर - उभय संग विमुक्त सप्तम गुणस्थान से बारहवे गुणस्थान पर्यन्त के शुध्दोपयोगी मुनिराजों को उत्तम अन्तरात्मा कहते है।

.७७.

प्रश्न ६. संग किसे कहते है ?
उत्तर - धन - धान्यादी बाहय एवं मिथ्यात्वादि अन्तरंग परिग्रह को संग कहते है।

प्रश्न ७. परिग्रह के दो ही भेद होते है क्या ?
उत्तर - मूल में तो मूर्छा परिग्रह है। उत्तर में अनेकों भेद है, परन्तु अपेक्षा से दो भेदो में ही विवेचना की गई है।

प्रश्न ८. बाहय परिग्रह और उसके भेद ?
उत्तर - धन-धान्यादी जड चेतन रुप वैभव को बाहय परिग्रह कहते है। इसके दस भेद निम्न प्रकार है।
(१)क्षेत्र (जमीन) (२)वास्तू (भवन)(३) हिरण्य (४)सुवर्ण (५)धन (६)धान्य
(७)दासि (८)दास (९) कुप्य (१०) भांड।

प्रश्न ९. आभ्यन्तर परिग्रह और उसके भेद ?
उत्तर - पर वस्तुओं में अपनत्व बुध्दि ही अन्तरंग परिग्रह है।
इसके १४ भेद निम्न प्रकार है इ
(१)मिथ्यात्व (२)क्रोध (३)मान (४)माया (५) लोभ (६)हास्य (७) रति (८)अरति(९)शोक (१०)भय (११)जुगुत्सा (१२)स्त्रीवेद (१३)पुरुष वेद (१४)नपुसंकवेद।

प्रश्न १०. दोनों प्रकार के परिग्रह से मुक्त मुनिराज को उत्तम अन्तरात्मा क्यों कहा ?
उत्तर - जिनके पार तिल-तुस मात्र भी परिग्रह रहता है वह निराकुल नहीं रह सकते है। परिग्रह को ही आचार्यो ने दु:ख का मुल कहा हॉ और उत्तम अन्तरात्मा विकल्प रहित होते है, इसलिए चौबिसों प्रकार के परिग्रह से रहित शुध्दोपयोगी मुनिराजों को ही उत्तम अन्तरात्मा कहते है।

आन्तरात्मा एवं परमात्मा

मध्यम अन्तर आतम है जो, देशव्रती अनगारी।
जघन कहें अविरत समदृष्टि,तीनों शिव मगचारी।।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोका लोक निहारी।। ५।।

अन्वयार्थ -(देशव्रती) दूसरी, प्रतिमा से दशवी प्रतिमा धारी श्रावक (अनगारी) ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका माताजी एवं छठवें गुणस्थानवर्ती सामान्य मुनिराज (जे) देशव्रती से लेकर सामान्य मुनिराज तक सभी (मध्यम अन्तर आतम है) मध्यम अन्तर आत्मा है और (अविरत)व्रत रहित (समदृष्टि) समदृष्टि को (जघन कहे) जघन्य अन्तरात्मा कहते है (तीनों)उत्तम, मध्यम एवं जगन्य यह तीनों प्रकार की आत्मा(शिव मगचारी) मोक्षमार्ग पर चलने वाली है (सकल) शरीर सहित प्रकार के है (तिन में) उनमें से जिनने (घाति निवारी) घातिया कर्मो का क्षय किया है वह (श्री अरहंत सकल परमातम) शरीर सहीत अरहंत परमात्मा है (लोकालोक निहारी) वह अरहंत परमात्मा लोकालोक को देखते है।

भावार्थ - अनादि काल से अज्ञान एवं अव्रत के कारण यह जीव संसार सागर में गोता खाता आ रहा है। सौभाग्य से गुरु उपदेश का निमित्त पाकर व्रतों से अलंकृत जो जाता है। दूसरी प्रतिमा से दसवी प्रतिमा पर्यन्त गृहवास में भी रहकर एकदेश मोक्ष मार्ग पर आरुण रहे और अनगारी अर्थात गृह त्यागी ऐलक,क्षुल्लक , आर्यिका तथा प्रमत्त मुनिदशा पर्यन्त यह सभी मध्यम अन्तरात्मा कहे जाते ळे और सच्चे देव शास्त्र गुरु एवं सप्त तत्वों का श्रध्दालू सम्यक्तवाचरण चरित्र (अन्याय अत्याचार एवं अभक्ष्य त्याग) रुप आचरण करने वाला फिर भी अब्रत सम्यग्दृष्टि संज्ञा वाले दान-पूजा आदि क्रियायें में तत्पर भव्यात्माओं को जघन्य अन्तरात्मा कहते है।

परमात्मा के दो भेद है। सकल परमात्मा और निकल परमात्मा। शरीर सहित, चार घातिया कर्म रहित अनन्त दर्श्न, ज्ञान, सुख, वीर्य से अलंकृत सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशी अनन्त भगवान को सकल परमात्मा कहते है तथा आठ कर्मो से हमेशा के लिये मुक्त हो गये है, अनन्त विशुध्दता से आत्म गुणों को प्रकट कर लिया है, राग, द्वेष आदि विकारी भाव कर्म एवं ज्ञानावरणादी आठ द्रव्य कर्म तथा शरीर आदि नोकर्म से मुक्त होकर लोक कि अग्र भाग में विराजमान शाश्वत निजानन्द पान करने वाले सिध्द प्रभु को निकल परमात्मा कहते है।

प्रश्न १. मध्यम अन्तर आत्मा किसे कहते है?
उत्तर - देशब्रती श्रावक एवं गृह त्यागी सामान्य मुनिराजों की मध्यम अन्तर आत्मा कहते है।

प्रश्न २. देशव्रती किन्हें कहते है ?
उत्तर - अहिंसादि पांच अणुब्रत, दिग् व्रतादि तीन गुणव्रत , सामायिक आदि चार शिक्षाब्रत, इस प्रकार बारह अणुब्रतों का अभिरुची से नियमित पालन करने वाले सम्यदृष्टि श्रावकों को देशब्रती कहते है।

प्रश्न ३. अनगारी किसे कहते है ?
उत्तर - गृह त्यागी ऐलक जी, क्षुल्लक जी, आर्यिक माताजी एवं सामान्य मुनिराजों को अनगारी कहते है।

प्रश्न ४. जघन्य अन्तर आत्मा किसे कहते है ?

उत्तर - पच्चीस दोषों से रहित, आठ गुणों से सहित अन्याय अत्याचार एवं अभक्ष्य के त्यागी वस्तु स्वरुप के श्रध्दालु प्रतिमा बध्द, व्रत रहित सम्यग्दृष्टि भव्यात्माओं को जघन्य अन्तर आत्मा कहते है।

प्रश्न ५. ये तीनों प्रकार के आत्मा मोक्षमार्गी है क्या ?
उत्तर -हॉ यह तीनों प्रकार के अन्तरात्मा मोक्षमार्ग पर अपनी गति से योग्यतानुसार बढने वाले होते है।

प्रश्न ६. परमात्मा के कितने भेद है ?
उत्तर - परमात्मा के दो भेद है इ

३. सकल परमात्मा (२)निकल परमात्मा।

प्रश्न ७. सकल परमात्मा किसे कहते है ?
उत्तर - शरीर सहित सर्वज्ञ, हितोपदेशी, वीतरागी अरहंत भगवान की आत्मा को सकल परमात्मा कहते है।

प्रश्न ८. अर्हन्त भगवान किन्हें कहते है ?
उत्तर - चार घातिया कर्मो से रहित अनन्त गुणों से सहित लोकालोक में अवस्थित समस्त पदार्थो को युगपद् जानने वाले प्रभु को अरहंत परमात्मा कहते है।

प्रश्न ९. निकल परमात्मा किसे कहते है ?
उत्तर - शरीर रहित अनन्त गुण सहित सिध्द भगवान की आत्मा को निकल परमात्मा कहते है।

निकल परमात्मा

ज्ञान शरीर त्रिविध कर्म मल, वर्जित सिध्द महन्त।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता।।
बहिरातमता हेय जान तजि, अन्तर आतम हुजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै।। ६।।

अन्वयार्थ- (ज्ञान शरीर) ज्ञान ही जिनका शरीर है (त्रिविध कर्म मल) तीनों प्रकार के कर्म मल से (वर्जित)रहित (महंता सिध्द) विश्व पूज्य सिध्द भगवान (ते) वह विश्व पूज्य सिध्द भगवान (अमल निकल परमातम है) राग-द्वेष एवं शरीर रुपी मल से रहित सिध्द परमात्मा है (शर्म अनन्ता भोगें) जो सिध्द भगवान अनन्तानन्त सुख में निमग्न रहते है (बहिरातमता) बहिरात्मपने को (हेय जान तज) हेय जानकर उसका त्याग करो (अन्तर आतम हूजै) अन्तर आत्म स्वरुप प्राप्ति में लगो (परमातम को निरन्तर ध्याय) परमात्मा का निरन्तर ध्यान करो (जो नित आनन्द पूजै) जो सदैव आनन्द देने वाला है।

अन्वयार्थ- (चेतनता बिन) चैतन्य आदि ज्ञान दर्शनादि से रहित (सो अजीव है) अजीव है (ताके पंच भेद है) उस अजीव तत्व के पांच भेद है - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल(पुद्गल पंच वरन) पुद्गल के पांच वर्ण है (रस) पांच रस है (दो गंध)दोगंध है,- सुगन्ध और दुर्गन्ध (बसु फरक जाके है) स्पर्श के आठ भेद है (जिय पुद्गल को चलन सहाई) जीव और पुद्गल को चलने में जो सहायक होता है (अनुरुपी धर्म द्रव्य) वह रुपदि रहित धर्म द्रव्य है (तिष्ठत अधर्म सहाई होय) जीव और पुद्गल को चलने में जो सहायक होता है (अनुरुपी धर्म द्रव्य) वह रुपादि रहित धर्म द्रव्य है (तिष्ठत अधर्म सहाई होय) जीव और पुद्गलों को ठहरने में जो सहायक होता है वह अधर्म द्रव्य है (जिन बिन मूर्ति निरुपी) ऐसे अर्धम द्रव्य को भी जिनेन्द्र भगवान ने अरुपी कहा है।

भावार्थ - इस लोक में जिनेन्द्र कथित सप्त तत्व की श्रृखला में ज्ञेय,हेय,उपादेय, ध्येय रुप जीव तत्व की विवेचना समझी। अब चर्चा करनी है ज्ञेय- रुप अजीव तत्व की। अखिल विश्व में चैतन्य गुण से रहित अजीव तत्व व्याप्त है। आचार्य ने पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल इन पांच भेदों में अजीव तत्वों को विभाजित किया है। पुद्गल में लाल पीलादि पांच वर्ण्, खट्टा मिठादि पांच रस, सुगन्ध दुर्गन्ध ये दो गंध, हल्का भारी आदि आठ स्पर्श है। इस प्रकार पुद्गल के २० गुण कहे जाते है।

जीव और पुद्गल को जो चलने में उदासीन रुप से सहायक निमित्त बनता है , जैसे मछली के लिये जल, उसे अरुपी धर्म द्रव्य कहते हैं और जीव व पुद्गल को उदासीन रुप से अवस्थित करने में जो निमीत्त बनता है उसे अधर्म द्रव्य कहते है, जैसे थके हुये पुरुष के लिये वृक्ष की छाया।

प्रश्न १. अजीव किसे कहते है ?

उत्तर - चेतना से रहित तत्व को अजीव कहते है।

प्रश्न २. अजीव तत्व के कितने भेद है ?
उत्तर - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये पांच भेद होते है।

प्रश्न ३. पुद्गल किसे कहते है ?
उत्तर - जो पूरण और गलन स्वभाव वाला हो अर्थात जो उत्पत्ती विनाश रुप परिणमन करता रहता है उसे पुद्गल कहते है।

प्रश्न ४. पुद्गल के गुण कितने है ?
उत्तर - पुद्गल के पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, इस प्रकार २० गुण है।

प्रश्न ५. पांच वर्ण कौन-कौन से है ?
उत्तर - काला, पीला, नीला, हरा, लाल।

प्रश्न ६. पांच रस कौन-कौन से है ?
उत्तर - खट्टा, मीठा, कडुवा, चरपरा, कषायला।

प्रश्न ७. गंध कितने है ?
उत्तर इ सुगन्ध और दुर्गन्ध दो है।

प्रश्न ८. स्पर्श् के नाम क्या है ?
उत्तर इ हल्का, भारी, कठोर, नरम, रुखा, चिकना, ठंडा, गरम।

प्रश्न ९. धर्म द्रव्य किसे कहते है ?
उत्तर - जो जीव और पुद्गल को उदासिन रुप से गमन करने में सहायक हो अर्थात रेल के चलने को पटरी के समान जो निमित्त होता है उसे धर्म द्रव्य कहते है।

उत्तर -सेकिण्ड,मिनिट, घडी, घंटा, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष आदि को व्यवहार काल कहते है।

प्रश्न ६. आस्त्रव किसे कहते है ?
उत्तर - मिथ्यात्वादि बिकार भावों से कर्मो का आत्मा की और आना आस्त्रव कहलाता है।

प्रश्न ७. आस्त्रव के सत्तावन भेद किस प्रकार है ?
उत्तर - पन्द्रह योग, पांच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पच्चीस कषायें यह सब मिलकर सत्तावन भेद है।

प्रश्न ८. आस्त्रव के और भी भेद है क्या ?

उत्तर - आस्त्रव के मूल में दो भ्ेद है। एक शुभास्त्रव दुसरा अशुभास्त्रव है।

प्रश्न ९. पन्द्रह योगों के नाम किस प्रकार है ?
उत्तर - मनोयोग के चार-सत्य मनोयाग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग एवं अनुभय मनोयोग।
वचनयोग के चार इ सत्य वचनयोग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग, अनुभय वचनयोग।
कामयोग के सात - औदारिक, औदारिक मिश्र , बैक्रियिक, बैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र कार्माण।

प्रश्न १०. मिथ्यात्व के पांच भ्ेंद किस प्रकार है ?
उत्तर - एकान्त, विपरित, वैनयिक, संशय, अज्ञान।

प्रश्न ११. अविरति किसे कहते है तथा किस प्रकार है ?

उत्तर - असंयम को अविरति कहते। स्पर्श्न, रसना, ध्रण, चक्षु, कर्ण् एवं मन इन छह के ऊपर नियंत्रण नहीं करना एवं पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक, वायु कायिक, वनस्पति कायिक, त्रस कायिक इनकी रक्षा नहीं करना यह १२ अविरती है।

प्रश्न १२. कषायों के २५ भेद किस प्रकार है ?
उत्तर - क्रोध, मान, माया, लोभ इन एक-एक के चार इ चार भेद, अनन्तानुबंध , अप्रत्यख्यान, प्रत्यख्यान एवं संज्वलन के भेद से इस प्रकार १६ कषाय और हास्य, रति, अरती, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपंशकवेद के भेद से नौ प्रकार। इस तरह कषायों के २५ भेद हुए।

प्रश्न १३. प्रमाद किसे कहते है ?
उत्तर - आलस्य (शिथिलता) को प्रमाद कहते है।

प्रश्न १४. प्रमाद के कितने भेद है ?
उत्तर - प्रमाद के १५ भेद है। चार विकथा, चार कषाय, पांच पापादि इन्द्रिय जन्य लम्पटता, निद्रा, स्नेह।

प्रश्न १५. विकथा किसे कहते है?
उत्तर -संसार वर्धक कथओं को विकथा कहते है।

प्रश्न १६. विकथाओं के नाम किस प्रकार है ?
उत्तर - राष्ट्र कथा, स्त्री कथा, भोजन कथा, अवनिपाल कथा अर्थात चोर कथा, ये चार विकथायें है।

आस्त्रव त्याग और बंध संवर निर्जरा

ये हि आतम को दुख कारण, तातें इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधे विधि सों, सो बंधन कबहु न सजिये।।
शम दमतें जो कर्म न आवै, सो संवर आदरिये।
तप बलतै विधि झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये।। ९।।

अन्वयार्थ - (ये ही) जिस मिथ्यात्व की विवेचना की जा चुकी है वह (आतम को दुख कारण) आत्मा को दुख पहुॅचाने में निमित्त है। (तातै इनको तजिये) इसलिए आश्रव के कारणों का परित्याग कर देना चाहिए। (जीव प्रदेश बंधे विधि सों) जीव के प्रदेश और कर्मो के प्रदेश दोनों का मिलना (सो बंधन) वह बंध है (कबहु न सजिये)(पूद्गल परमाणुओं का आत्मा के साथ बंध) कभी नहीं करना चाहिए। (सम दम तै) समता पूर्वक विभाव परिणामों का दमन करने से (जो कर्म न आवै) जो कर्मो का आना अवरुध्द हो जाता है (सोंसंवर आदिरिये) ऐसे संवर कासतत आचरण करना चाहिऐ (तप बल तै) तपस्या की श्क्ति से (विधी झरन निर्जरा) सदा कर्मो का झरना निर्जरा है (ताहि) उस निर्जरा का (सदा आचरिये) सदा आचरण करना चाहिये।

भावार्थ - इस संसार सागरमें अनादि काल से गोते खाते हुए सभी जीव अनन्त दु:खो को सहन करते आ रीहे हे। इन दुखों का मूल कारण मिथ्यात्व है। अत: मिथ्यात्व को हमेशा-हमेशा के लिये तिलांजलि देना है। आस्त्रव और बंध में मिथ्यात्व और कषाय हि कारण बनते है। जीव के रागादि परिणामों का निमित्त पाकरउ कर्मै प्रदेशरें का आत्म प्रदेशों के साथ् एक क्षेत्रावगाही हो जाना ही बंध है। इस बंध के कारण ही ज्ञायक स्वभावी चैतन्य आत्मा जन्म-मरण आदि सांसारिक दु:खो में उलझ

- जाता है। ऐसा कर्म प्रदेशों का बंध किसी भी स्थिती मे हमें नहीं करना है। समता स्वभाव से विभाव परिणामों का दमन या निरोध ही संवर है। स्वभावाश्रित इस संवर का हमें भली प्रकार समादर करना है और भेद विज्ञान पूर्वक तपस्या के बल से कर्मो को क्षय करना ही निर्जरा है ऐसे परमोपकारी निर्जरा का सदेव आचरण करना चाहिए।

`

प्रश्न १. आत्मा को दु:ख देने वाला कौन्‍ है ?
उत्तर - आत्मा को दुख देने वाला आस्त्रव है।

प्रश्न २. आस्त्रव का हमें क्या करना चाहिये ?
उत्तर - आस्त्रव का हमें त्याग करना चाहिये।

प्रश्न ३. शुभं्‍ास्त्रव का भी त्याग करना है क्या ?
उत्तर - पुरुषार्थ पूर्वक अशुभास्त्रव का त्याग किया जाता है। आत्म स्वरुप में निमग्न होने पर शुभास्त्रव तो सहज में छुट जाता है।

प्रश्न ४. बन्ध किसे कहते है ?
उत्तर - कर्मो का आत्मा के साथ मेल होने को बन्ध कहते है।

प्रश्न ५. संवर किसे कहते है ?
उत्तर - राग-द्वेष मय विभं्‍ाव भावों तथा द्रव्य कर्म का अभाव संवर है।

प्रश्न ६. निर्जरा किसे कहते है ?
उत्तर - सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं तपस्या के द्वारा पूर्व संचित कर्म प्रदेशों का क्षय होना निर्जरा है।

मोक्ष और व्यवहार सम्यक्त्व

सकल कर्म तै रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इह विध जो सरधा तत्वन की, सी समकित व्यवहारी।।
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दया जुत सारो।
ये हु मान समकित को कारण, अष्ट अंग जुत धारो।। १०।।

अन्वयार्थ - (सकल कर्म तैं रहित अवस्था) ज्ञानावारणादि समस्त कर्मो से रहित अवस्था (सो शिव) वह मोक्ष स्वरुप है (थिर सुखकारी) और अक्षुण्ण अतिन्द्रिय सुखदायक है (इह विध जो सरधा तत्वन की) इस प्रकार से जो सातों तत्वो की यथार्थ श्रध्दा है (सो समकित व्यवहारी) वह व्यवहारी सम्यग्दर्शन है (देव जिनेन्द्र) अट्ठारह दोष राहित सर्वज्ञ वीतरागी देव (परिग्रह बिन गुरु) (पिछी, कमण्डलु औार शास्त्र के अतिरिक्त) समस्त परिग्रह के त्यागी गुरु (दया जुत धर्म) अहिंसा प्रधज्ञन वीतराग धर्म (सारो) उत्कृष्ट है (ये हु मान समकित को कारण) ये चारों अर्थात सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, धर्म ही सम्यक्त्व का कारण है, ऐसा मानकर यहां (अष्ट अंग जुत धारो) सम्यग्दर्शन आठ अंगो सहित धारण करना चाहिये।

भावार्थ - ज्ञानावरणीय, दर्श्नावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नामख गोत्र एवं अन्तरएियं इन आठों कर्मो से वेष्ठित (घिरे हुये) संसार आत्मा चारों गति चौश्रासी लाख योनी में विभिन्न प्रकार की पर्यायों से परिणमन करता हुआ दुख पा रहा है, किन्तु जो आत्मा रत्नत्रय रुप पुरुषार्थ के बल से अष्ट कर्म रुपी किले को खंड-खंड कर परमात्मा पद को प्राप्त होकर हमेशा के लिए प्रतिक्षण असीम आनन्द का अनुभव करते हुये लोक के अग्र भाग में सुशोभित होते है। इसी का नाम आचार्यो ने स्वभावाश्रित सांसारिक भाव से रहित मोक्ष अवस्था अर्थात मोक्ष तत्व कहा है।

इस प्रकार सातों तत्वों की यथावत् आस्था से व्यवहार सम्यग्दर्श्न धारण कर जो सम्यग्दृष्टि भव्यात्मा अट्ठारह दोष रहित छ्यालीस गुण सहित सर्वज्ञ वीतरागी एवं हितोपदेशी सच्चे जिनेन्द्र देव की उपासना करता है। एवं विषय कषाय तथा आरम्भ परिग्रह से विरक्त आत्म स्वरुप में अनुरक्त आगम का स्याद्वाद शैली से प्रतिपादन करने वाले दिगम्बर मुनिराजों के द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुसरण् करता है और तीर्थकर देव के मुखारविन्द से मुखरित द्वादशांग वाणी का स्याद्वाद नय प्रमाण से निरन्तर मन्थन करता हुआ तत्व निर्णय करता है, साथ ही अहिंसा प्रधान समस्त भव्य प्राणियों को सुखद जन-जन उपकारी वीतराग धर्म को धारण करने के लिये तत्पर रहता है, वही सम्यक्त्व परिणति है।

इस प्रकार सच्चे देव, शास्त्र, गुरु एवं धर्म के प्रति आस्था ही सम्यग्दर्श्न की प्राप्ति में कारण है, क्यों कि तत्व निर्ण्य में सम्यग्दृष्टि जीव की आस्था स्वाभाविक रुप से अवगाढ इनके प्रति रहती है। अत: हमें अष्ट अंगों से समन्वित ऐसे सम्यग्दर्शन को अवश्य धारण करना इष्ट है तथा अपना धं्र्म पुराषार्थ अपने आप में जगाकर मोक्ष पुरुषार्थ की और अ्ग्रसार होना चाहिये।

प्रश्न १. मोक्ष तत्व किसे कहते है ?
उत्तर- सम्पूर्ण् कर्मो से पूर्ण विमुक्त होकर स्व-स्व्रभाव में रहना मोक्ष तत्व है।

प्रश्न २. मोक्ष में जीव क्या करते है ?

उत्तर - मोक्ष होने पर जीव सहज विशुध्द अनन्त गूणों से युक्त निराकुल अक्षय आनन्द का उपभोग करते है।

प्रश्न ३. क्या मोक्ष का आनन्द हमारे इन्द्रिय जन्य आनन्द सदृश ही है ?
उत्तर -मोक्ष का आनन्द उपमातीत अक्षय है, स्वयं से उत्पन्न होने वाला है, जबकि इन्द्रिय जन्य सुख क्षणिक विनाशीक है। मोक्ष सुख की तुलना इन्द्रिय जन्म सुख से नहीं की जा सकती है।

प्रश्न ४. मोक्ष से जीव लौटकर आते है क्या ?
उत्तर - मोक्ष अवस्था प्राप्त करने के बाद कोई भी पुन: संसार अवस्था में लौटकर नाहीं आतेक्योंकी (जो आनन्द प्रतिक्षण मोक्ष अवस्था में प्राप्त होता है, उसकी संसार में कल्पना भी नहीं की जा सकती है। दूसरी बात यह भी है कि मोक्ष में जीव पूर्ण शुध्द अवस्था को प्राप्त करके जाता हे) एक बार शुध्द अवस्थ्ा को प्राप्त हो जाने के पश्चात् अशुध्द अवस्था नहीं होती।

प्रश्न ५. व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते है ?
उत्तर - उपरोक्त तत्वों काज्ञेय, हेय, उपादेय, ध्येय रुप से यथार्थ श्रध्दान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न ६. सच्चे देव किन्हें कहते है ?
उत्तर- सर्वज्ञ, वीतरागी, हितोपदेशी अट्ठारह दोषों से रहित जिनेन्द्र भगवान को सच्चे देव कहते है।

प्रश्न ७. सच्चे शास्त्र किसे कहते है ?

उत्तर - तीर्थकरों की दिव्य ध्वनि से ध्वनित द्वादशांग रुप श्रुत ज्ञान से वीतरागी आचार्यो द्वारा रचित शास्त्रों की सच्चे शास्त्र कहते है।

प्रश्न ८. सच्चे गुरु किन्हें कहते है ?

उत्तर -विषय कषाय एवं आरम्भ परिग्रह से मुक्त तथा अट्ठाईस मूल गुणों से युक्त दिगम्बर मुनिराजों को सच्चे गुरु कहते है।

प्रश्न ९. सच्चा धर्म किसे कहते है ?
उत्तर -सच्चे सुख के जनक अहिंसा प्रधान वीतराग धर्म की सच्चा धर्म कहते है।

प्रश्न १०. सच्चे देव ,शास्त्र गुरु एवं धर्म की आस्थ्ंा से सम्यग्दृष्टि जीव का क्या मतलब है।
उत्तर- सम्यग्दृष्टि जीव सच्चे देव, शास्त्र , गुरु एवं धर्म की आस्था पूर्वक अपने ज्ञान एवं आचरण को निर्मल बनाने का पुरुषार्थ करता है।

प्रश्न ११. सम्यग्दर्श्न के कितने अंग है और यह कितने दोष रहित है ?
उत्तर- सम्यग्दर्शन के आठ अंग है, और यह दर्शन २५ दोषों से रहित होता है।

प्रश्न १२. सम्यग्दर्श्ान की प्राप्ति किन कारणों से होती है ?
उत्तर - सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में मूल कारण स्वरुप श्रध्दान एवं सप्त प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्ष्ंयोपशम है तथा इनके अनन्तर तत्व श्रध्दान, देव, शास्त्र, गुरु समागम, धर्मोपदेश, जाति स्मरण, वेदना, संस्कार आदि अनेकों कारण कहे जा सकते है।

प्रश्न १३. गतियों की अपेक्षा सम्यक्त्वीत्पत्ति के कारण कितने है ?
उत्तर - सम्यक्त्वांत्पत्ति के बाहय साधन या कारण कई प्रकार के होते है जैसे-नरक गति में तीसरें नरक तक, जाति स्मरण, धर्म श्रवण और दु:खानुभव ये तीन तथा चौथे से सातवें नरक तक जाति स्मरण और दु:खानुभव ये दो साधन है। तिर्यत्र्चगति और मनुष्यगति में जाति स्मरण, धर्म श्रवण औश्र जिनबिम्ब दर्श्ान ये तीन साधन है। देवगति में बारहवें स्वर्ग तक जातिस्मरण, धर्म श्रवण, जिन कल्याणक दर्शन और देवर्ध्दि दर्शन ये चार साधन है, तेरहवे स्वर्ग से सोलहवे स्वर्ग पर्यन्त देवर्ध्दि दर्श्ान को छोडकर शेष तीन तथा नवग्रैवेयको में जातिस्मरण और धर्म श्रवण ये दो साधन है। इसके आगे सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते है।

प्रश्न १४. लब्धि किसे कहते है और उसके कितने भेद है ?
उत्तर - प्राप्ति अर्थात सम्यक्त्व ग्रहण के योग्य सामग्री की प्राप्ति को लब्धि कहते है। लब्धियों के पांच भ्ेद है इ
(१) क्षयोपशम, २. विशुध्दि. ३.देशना, ४. प्रायोग्य, ५. करणालब्धि।

प्रश्न १५. पांचो लब्धियों का अर्थ सरल शब्दों में स्पष्ट करो ?
उत्तर - क्षयोपशम लब्धि - अशुभ कर्मो की अनुभाग शक्ति का प्रतिसमय अनन्तगुणा हीन होकर, उदीरणा को प्राप्त होना क्ष्ंयोपशम लब्धि है। इससे उत्तरोत्तर परिणाम निर्मल होते है।

विशुध्दि लब्धि - निर्मलता विशेष को या साता वेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतीयों के बंन्ध्ंा में कारणभूत परिणामों की प्राप्ति को विशुध्दि लब्धिकहते है।

देशना लब्धि - उपदेश ग्रहण करने की क्षमता को देशनालब्धि कहते है। छह द्रव्य और पदार्थों के ज्ञाता गुरु के द्वारा उपदृष्टि अर्थ को अवधारण करने को देशना लब्धि कहते है।

प्रायोग्य लब्धि - आयु कर्म को छोडकर शेष सभी कर्मो की स्थिती का अनन्त: कोडाकोडी सागर प्रमाण कर देना और अशुभ कर्मो में ये घातिया कर्मो के अनुभाग को लता और दारु इन दो स्थ्ंानगत तथा अघातिया कर्मो के अनुभाग को नीम और कांजी इन दो स्थानगत कर देना प्रायोग्य लब्धि है।

करण लब्धि - करण का अर्थ परिणाम है अर्थात वे परिणाम जो नियम से प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में कारण है उनकी प्राप्ति को करण लब्धि कहते है।

प्रश्न १६. क्या सभी जीवों के पांचो लब्धि संभ्ंव है ?

उत्तर - अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव के करण लब्धि को छोडकर शेष चार लब्धि हो सकता्र   है लेकिन जो सम्यग्दर्शन के सम्मुख है, ऐसे भव्य जीव को ही ५ लब्धि प्राप्त होती है।

सम्यक्त्व के पच्चीस दोष और आठ गुण

वसुमद टारि निवारी त्रिशठता,षट अनायतन त्यागो।
शंकादिक बसु दोष बिना, संवेगादिक चित्त पागो।।
अष्ट अंग अरु दोष पच्च्ीसों, तिन संक्षे्पै कहिये।
बिन जाने तें दोष गुणन को , कैसे तजिये गहिये।। ११।।

अन्वयार्थ - (वसु मद टारि) आठ मदों को छोडकर (त्रि शठता निवारी) तीन मूढता से परे होकर (षट् अनायतन त्यागो) छह अनायतनों का त्याग करो। (मंकादिक) शंकां क्षादि (वसु दोष बिना) आठ दोषों से रहित (शंवेगादिक चितपागो) संवेग अनुकम्पा आदि गुणों को धारण करना चाहिये। (अष्ट अंग अर दोष पच्चीसों) आठ अंग और २५ दोष है। (तिन संक्षेपै कहिये) उनका संक्षेप से विवेचन किया जाता है (बिन जाने तै) बिना समझे (दोष गुणन को) दोष और गुणों को (कैसे तजिये गहिये) किस प्रकार त्याग और ग्रहण किया जा सकता है।

भावार्थ - प्रत्येक भवयात्मा निरन्तर मोक्ष सुख पाने क`लिये लालाकयत है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक चारित्र इन तीनों की एकता मोक्ष मार्ग है। इनमें प्रथम स्थान सम्यग्दर्श्न को प्राप्त है , जिसे मोक्ष महल की प्रथम सीढी कहां जाता है। करणानुयोग की अपेक्षा से सम्यग्दर्श्न के मूल में तीन भेद है। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ एवं मिथ्यात्व सम्यक मिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति इन तीनों के क्षय होने पर क्षायिक सम्यक्त्व और उपशम होने पर उपशम तथा सवंघाती पकृतिंयों का उदयाभावी क्षय, उन्ही का सद्वस्था रुप उपशम और देयाघसाती सम्यक प्रकृति के उदय में क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है। ऐसा सम्यक्त्व धारी जीव पच्चीस दोषों से रहित और आठ मूल गुणों से सहित होता है। पच्चीस दोषों में आठ मद, आठ शंकादि दोष, तीन मूढता और छह अनायतन इस प्रकार इन पच्चीस दोषोंसे रहित एवं संवेग, अनुकम्पा आदि भावना के साथ अष्ट गुणों से विभूषित सम्यग्दृष्टि जीव होता है। उन पच्चीस दोष और आठ मदों की विवेचना संक्षेप से की जा रही है, क्योकि दोष और गंणों का परिज्ञान किये बिना गुणो् को अपनाना और दोषों का छाटना संभव नहीं है।

प्रश्न १. दोष किसे कहते है ?
उत्तर - स्वरुप प्राप्ति में बाधक कारणों को दोष् कहते है या विकार भाव को दोष कहते है।

प्रश्न २. शंकादि दोष कितने होते है ?
उत्तर - ये आठ होते है। (१) शंका (२)आकांक्षा (३)विचीकित्सा (४)मूढदृष्टि (५)अनुपगूहन (६)अस्थितिकरण (७)अवात्सल्य (८)अप्रभावना।

प्रश्न ३. मूढता किसे कहते है एवं कितनी है ?
उत्तर - देखो देखी बिना विवेक के क्रिया करने को मूढता कहते है। मूढता तीन है (१)देव मूढता (२)गुरु मूढता (३)लोक मूढता।

प्रश्न ४. अनायतन किसे कहते, कितने होते है ?
उत्तर - अपूज्य स्थ्ान एवं पुरुष अर्थात कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु तथा उनकेप्रशं्सकों को अनायतन कहते है। अनायतन छह है (१)कुगुरु (२) कुदेव (३) कुगुरु सेवक (४) कुधर्म (५) कुदेव सेवक (६) कुधर्म सेवक।

प्रश्न ५. मद किसे कहते है एवं कितने होते है ?
उत्तर - अहंभाव को मद कहते है। मद आठ होते है, उनमे नाम निम्न प्रकार है (१) जाति (२) कुल (३) पूजा (४) रुप (५) ज्ञान (६) विद्या (७) बल (८)तप।

.९६.

प्रश्न ६.प्रशम किसे कहते है ?
उत्तर - कषायों की मन्दता अर्थात क्रोधादि कषायों का उपशम होना प्रशम है।

प्रश्न ७. संवेग किसे कहते है ?
उत्तर - संसार शरीर भोगों से भ्ंयभ्ीत होना ही संवेग है (भद्र परिणाम)

प्रश्न ८. अनुकम्पा किसे कहते है ?
उत्तर - मिथ्यात्व से प्रेरित पाप कर्म से पीडित दु:खी जीवों को देखकर मन में करुणा या दया का भ्ांव आना अनुकम्पा है। (वात्सल्य भाव)

प्रश्न ९. आस्तिक्य किसे कहते है ?
उत्तर - षट् द्रव्य रुप लोक में विश्वास रखते हुये स्वात्म स्वरुप की आस्था जगाना ही आस्तिक्य है। (सत्य निष्ठा)

प्रश्न १०. पच्चीस दोषों को जानने की क्या आवश्यक्ता है ?
उत्तर - पच्चीस दोषों का परिज्ञान किये बिना उनसे मुक्त होना संभव नहीं है। अत:पच्चीस दोषों को समझकर ही छोडा जा सकता है।

प्रश्न ११. आठ अंगो को समझना क्यों आवश्यक है ?
उत्तर - आठ अंगो को समझे बिना अपने में धारण करना, उनको अपने जीवन में स्थान देना श्क्य नहीं है। अत: अपने जीवन में उतारनें के लिये आठ अंगो का ज्ञान आवश्यक है।

.९७.

आठ अंग

जिन वच में शंका न धार, वृष भव सुख वांक्षा भानै।
मुनि तन मलिन न देख घिनावै, तत्व कुतत्व पिछानै।।
निज गुण अरु पर औगुण ढांके, वा निज धर्म बढावे।
कामादिक कर वृषितैं चिगतें, निज पर को सु दिढावैं।। १२।।
धर्मी सों गौ वच्छ प्रीति सम, कर जिन धर्म दिपावै।
इन गुण्ंतै विपरीत दौष वसु, तिनको सतत् खिपावे।।

अन्वयार्थ - (जिन वच में शंका न धार) जिनेंन्द्र भगवान के वचनों में शेंका नहीं करना (वृष) धर्म को धारण करके (भव सुख वांक्षा न भ्ांनै) सांसारिक सुख्ं की इच्छा न करना (मुनि तन मलिन न देख घिनावै) मुनि महाराज के मलिन शरीर को देखकर घृणा नहीं करना (तत्व कुतत्व पिछानै) तत्व कुतत्व में विवेक रखना चाहिये। (निज गुण) अपने गुण (अरु पर औगुण ढांके) और दूसरों के अवगुणों को ढांकना (वा) अथवा (निज धर्म बढावें) आत्म धर्म, वीतराग धर्म की वृध्दी करना चाहिये। (कामादिक कर वृषतै चिगतै) काम, क्रोधादि विकारों का निमित्त पाकर स्वयं अपने मन को और दूसरे के मन को धर्म से विचलित होने पर (निज पर को) अपने आपको या अन्य किसी को (सुदुढावै) धर्म मार्ग पर स्थित करें (धर्मी सों) धर्मात्मा जीवों से (गौ वच्छ प्रीतिसम) गाय बछ्डें की प्रीति के समान (कर जिन धर्म दिपावैं) जिन धर्म को प्रकाशित करना चाहियें(इन गुणतैं) निशंकित आदि गुणों से (विपरीत वसु दोष) विपरीत आठ दोष है (तिनको सतत खिपावै)उनको परिपूर्ण नष्ट करना चाहिये।

भावार्थ् - जिस प्रकार न्यून अक्षर मन्त्र विष वेदना को करने में समर्थ नहीं है , ठीक उसी प्रकार अंग हीन सम्यग्दर्शन भी जन्म सन्तति का विच्छेद करनें में सक्षम नही होता। सांगोपांग सम्यग्दर्श्न की महिमा मनुष्य क्या देवों मे भी पायी जाती है।

.९८.

सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान और चारित्र का कोई महत्व नहीं है, परन्तु अंग विहोन सम्यग्दर्शन का महत्व भी निर्मूल है। जिनेन्द्र भगवान की वाणी में अड्िग आस्था निशंकित नाम का पहला अंग है। नियम, व्रत, विधि, विधान आदि धार्मिक अनंष्ठानरों से किसी प्रकार के इन्द्रिय सुखों की कांक्षा नही करना निकांक्षित नाम का दुसरा अंग है। मूनिराज आदि के मलिन शरीर एव कुष्ट आदि रोग से पीडित रोगी तथा अन्य घृणीत पदार्थो में ग्लानि नहीं करना निर्विचिकित्सा अंग है। मिथ्या मतियों की कपोल कल्पना या चमत्कारों से प्रभ्ािवित न होकर वस्तू अथवा में दृढ आस्थ्ंा रखना अमूढ दृष्टि नामक चतुर्थ अंग है। अपने में अनेक विशेषताये होने पर भी अपनी प्रश्ंसा नहीं करना और दूसरों में सर्व गुण्ो का अभ्ंाव होने पर भी निन्दा नहीं करना यह पांचवा उपगूहन अंग है। आत्मा गुणों की रक्ष्ंा करते हुये काम क्रोधादि से स्वयं का मन या अन्य किसी साधर्मी भाई का मन ध्ंर्म से विचलित हो ने पर जैसे बने तैसे स्व पर को स्थिर रखना यही छटवॉ स्थितिकरण अंग है। आत्म गुणों में अभिरुचि रखते हुये विश्व के सभी प्राणियों को अपने समान समझकर उनसे मैत्री भाव रखना यह सम्यग्दर्शन का सातवां वात्सल्य अंग है। रत्नत्र्ंय के द्वारा आत्म गुणों को विकास में लाते हूये दान , पूजा, सम्यग्ज्ञान प्रभ्ंावना हेतु शिक्षण शिविर धार्मिक विद्यालय पाठशाला आदि के द्वारा धर्म के प्रति भव्य प्राणियों् की आस्था बढाना सम्यग्दर्शन का प्रभावना नाम का अष्टम अंग है। इन आठों अंगो के स्वरुप को समझकर हमें अपने जीवन में उतारना और इनसे विपरीत जो शंकादिक आठ दोष है उनको प्रयत्न पूर्वक नष्ट करना ही सच्चा सम्यग्दर्श्न आराध्य है।

.९९.

प्रश्न १. अंग किसे कहते है एवं सम्यग्दर्शन के अंग कितने होते है ?

उत्तर - किसी भ्ीं वस्तू क अभिन्न हिस्से कसे अंग कहते है। सम्यग्दर्शन क (१)निशंकित (२) निकांक्षित (३)निर्विचिकित्सा (४) अमूढ दृष्टि (५)उपगूहन (६)स्थितिकरण (७)वात्सल्य और (८) प्रभावना, इस प्रकार आठ अंग होते है।

प्रश्न २. निशंकित अंग किसे कहते है ?

उत्तर - जिनेन्द्र भगवान की वाणी में किसी प्रकार की शंका नहीं करना निशंकित अंग है।

प्रश्न ३. निकांक्षित अंग किसे कहते है ?

उत्तर - धर्म को घारण करके फलस्वरुप सांसारिक सुखों की वांछा न करना निकांक्षित अंग है।

प्रश्न ४. निर्विचिकित्सा अंग किसे कहते है ?

उत्तर - मुनिराज आदि के मलिन शरीर या अन्य मलिन वस्तूओं को देखकर ग्लानि नहीं करना निर्विचिकित्सा अग है।

प्रश्न ५. अमूढ दृष्टी अंग किसे कहते है ?

उत्तर - वस्तु व्यवस्था में आर्ष पध्दत से तत्व कुतत्व का निर्णय कर आस्था रखना अमुढ दृष्टि अंग है।

प्रश्न ६. उपगूहन अंग किसे कहते है ?

उत्तर - आत्म गुणों का आश्रय लेते हुये अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा नहीं करना उपगूहन अंग है।

प्रश्न ७. स्थितीकरण अंग किसे कहते है ?

.१००.

उत्तर - अपने स्वभाव में स्थिर रहने की भावना से, कामादि विकारों से अपना या अन्य किसी साधर्मी भाई का मन धर्म से विचलित हो तो उसे जैसे भी बने वैसे अपने कर्तव्य में स्थिर रखना यही स्थितकरण अंग है।

प्रश्न ८. वात्सल्य अंग किसे कहते है?
उत्तर - निजात्म गूणों में प्रीती रखतें हुए विश्वश के सभी प्राणियों, साधर्मी भाई बन्धुओं में प्रेम भाव रखना वात्सल्य अंग है।

प्रश्न ९. प्रभावना अंग किसे कहते है ?
उत्तर - रत्नत्रय के द्वारा आत्मस्वरुप की निर्मलता एवं दान पूजा तथा सम्यक ज्ञान के प्रचार प्रसार आदि के आयाजन कर भव्यात्माओं के मन में धर्म का आकर्षक प्रभ्ंाव जमाना प्रभावना अंग है।

आठ मद

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रुप की, मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै।। १३।।
तप को मद न, मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारें तो यही दोष वसु, समकित को मल ठाने।।

अन्वयार्थ - (पिता भूप वा मातुल) अपना पिता भूपति अथवा मामा राजा (जो होय तो मद न भानै) यदि होय तो अभिमान नहीं करना चाहिए (रुप को मद न) अगर अपना रुप सुन्दर हो तो उसका मद नहीं करना चाहिए। (मद ज्ञ ाान को न) ज्ञान का मद नहीं करना चाहिए (धन बल को मद न भानै) धन और बल का मद नहीं करना चाहिए (तप को मद न) तपस्या का मद नहीं करना चाहिए (प्रभुता को मद न) अपने

स्वभाव अथवा ऐश्वर्य का मद नहीं करना चाहिए। (करै सौ न निज जानै) इन आठ प्रकार का जो अभिमान नहीं करता वही अपने स्वरुप को जान सकता है। (मद धारें तो यही दोष वसु) यदि आठ मदों को धारण करें तो इन्ही आठ मदों से उत्पन्न हुआ दोष। (समकित को मल ठानै) सम्यग्दर्शन को मलिन बना देता है।

भावार्थ - निज सम्पत्ति ऋजुता गुण को भूलकर अभिमान की संगति में निरन्तर संसार सागर में यह जीव गोता खा रहा है। ये आठ मद सम्यग्दर्शन के घतक है, अत:
इन्हें अपने हृदय में स्थान देना अनुचित है। जाति, कुल, ज्ञान, धन, बल, तप, प्रभुता के मद में मस्त होकर स्वात्म गुणों को भूंल हुए है। जो सम्यक पुरुषार्थ कर इन मदों को तिलात्र्जलि देकर रत्नत्रय रुप पंरुषार्थ करता है, वह मोक्ष पुरुषर्थ सिध्द करने में सफल हो जाता है। और जो प्राणी इन आठ मदो ंको अपने आप में स्थान देता है, वह अपने सम्यक्त्व को मलिन करके मोक्ष मार्ग में कांटे बोता है।

प्रश्न १. कूल मद किसे कहते है ?
उत्तर - अपने पिता पक्ष में राजा आदि महान पुरुष हों या मै उच्च कुल वाला हूँ ऐसा अभिमान करना कुल मद है।

प्रश्न २. जाति मद किसे कहते है ?
उत्तर - अपने मामा के कुल में कोई विशेष पद पर आसीन हो या विशेष समृध्दता हो तो मेरे मामा इतने समृध्दशाली है, लागों के सामने ऐसा अभ्ंिमान करना जाति मद कहलाता है।

प्रश्न ३. रुप मद किसे कहते है ?

उत्तर -अपनी सुन्दर काया को देख कर मेरे समान कोई सुन्दर नहीं है ऐसा गर्व करना रुप मंद है।

प्रश्न ४. ज्ञान मद किसे कहते है ?
उत्तर - थोडे शास्त्र पढकर या लौकि उपाधियां प्राप्त कर अपने आपको ज्ञानी मानना और दूसरों को मूर्ख समझना ज्ञान मद है।

प्रश्न ५. धन मद किसे कहते है ?
उत्तर - पुण्य कर्म से लक्ष्मी को पाकर मै इतना ऐश्वर्यशाली हूँ तुम क्या समझते हो, तुम जैसों को खरीद लॅुगा ऐसा अभ्मिान करना धन मद है।

प्रश्न ६. बल मद किसे कहते है ?
उत्तर - जवानी के जोश में, निर्बलों के बीच में मै बलवान हूॅ, मेरे में अपार शक्ति है, ऐसा अभिमान करना बल मद है।

प्रश्न ७. तप मद किसे कहते ?
उत्तर - व्रत उपवास आदि करके लागों से कहना तुम क्या समझतें होमै मासोपवासी हूॅ, मै बारह-बारह घंटे ध्यान करता हूॅ, ऐसा करने वालों को तप मद कहते है।

प्रश्न ८. प्रभुता मद किसे कहते है ?
उत्तर - लागों के मुख से अपनी ख्याति सुनकर ऐसा अनुभव करनाउकि मेरा सारे विश्व मे वडप्पन या नाम हो रहा है , यह प्रभूता मद है।

प्रश्न ९. आठ मदों का क्या नाम है ?
उत्तर - यह आठ मद सम्यग्दर्शन को मलिन बनाने है।

.१०३.

षट् अनायतन तीन मूढता

कूगुरु कुदुव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरे है।
जिनमुनि जिन श्रृत बिन, कुगूरादिक तिन्हें न नमन करें है।। १४।।

अन्वयार्थ - (कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की) खोटे गुरु , खोटे देव, और खोटे धर्म तथा इनके सेवकों की (प्रशंसा नहिं उचरें है) प्रशंसा नहीं करना चाहिये (जिन मुनि जिन श्रुत बिन) जिनेन्द्र भगवान दिगम्बर मुनि और जिन बाणी के अतिरिक्त (कुगुरुरादिक) जो कुगुरु आदि है (तन्हिं नउनमन करे है) उन्हें कभी नमस्कार नहीं करना अनायतन त्याग है।

भावार्थ - अनादि काल से इस जव ने खोटे गुरुओं के उपदेशनुसार आचरण करके,कुदेवों को सेवा भक्ति करके खोटे धर्म रुप आचरण करके एवं इन तीनो को मानने वालों की संगति व प्रशंसा काके अहर्निश संसार को बढाया है। खोटे देव, शास्त्र गुरु इन तीन और इन तीनों को मानने वालों की प्रशंसा करना छह अनायतन है। इन्हें विमोचन करना योग्य है। ज्ञानी भव्यात्मा छह अनायतनों से बिल्कुल दूर रहता है तथा सम्यदृष्टि जीव जिनेन्द्र भगवान, दिगम्बर मुनि और सच्ची स्वाद्वादी रुप जिनवाणी मॉ के अतिरिक्त रागी-द्वेषी देव, पाखण्डी भेषधरी साधु रुप गुरु और खोटे शास्त्रों को स्वप्न में भी श्रध्दा और भक्ति से नमस्कार नहीं करता, यदि नमस्कार करता है तो सम्यग्दृष्टि नहीं है। इन तीन मुढताओं में विलीन अज्ञानी है।

प्रश्न १. कुगुरु अनायतन किसे कहते है ?

उत्तर - रागी-द्वेषी मिथ्यावेष्ी कुगुरुओं को गुरु मानना यह कुगुरु नाम का अनायतन है।

प्रश्न २. कुदेव अनायतन किसे कहते है ?
उत्तर - अट्ठारह दोष से सहित, रागी-द्वेषी कुदेवों को देव मानना कुदेव नाम का अनायतन है।

प्रश्न ३. कुवृष अनायतन किसे कहते है ?
उत्तर - हिंसामय खोटे धर्म में धर्मपना मानना कुवृष (कुधर्म) अनायतन है।

प्रश्न ४. कुगुरु सेवक अनायतन किसे कते है ?
उत्तर - कुगुरुओं की सेवा करने वालों की प्रशंसा करना कुगुरु सेवक अनायतन कहलाता है।

प्रश्न ५. कुदेव सेवक अनायतन किसे कहते है ?
उत्तर - कुदेव सेवकों की सेवा करने वालों की प्रशंसा करना कुदेव सेवक अनायतन है।

प्रश्न ६. कुधर्म सेवक अनायतन किसे कहते है ?
उत्तर - कुधर्म सेवकों की सेवा करने वा लों की प्रशंसा करना कुधर्म् सेवक अनायतन है।

सम्यग्दृष्टि की महिमा

दोष रहित गुण सहित सुधी जे, सम्यकदर्श सजै है।
चरित मोह वश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै है।।
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, ज ल तै मिन्न कम लहै।
नगर नारी को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है।। १५।।

अन्वयार्थ - (दोष रहित) दोषों से रहित (गुण सहित) गुणों से सहित (जे सुध्ी) जो बुध्दीमान है (वह सम्यक्दर्श सजै है) सम्यग्दर्शन से विभूषित है (चरित मोह वश लेश न संजम पै)चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से लेश मात्र भी संयम न होने पर भी (सुरनाथ

जजै है) देवेन्द्र प्रशंसा करते है (गेही पै) गृहस्थ होने पर भी (गृह में न रचै) घर में लीन नहीं है (ज्यों जल तै भिन्न कमल है) जिस प्रकार वेश्या का प्रेम होता है (कादे में हेम अमल है) कीचड में पडा हुआ सोना भी निर्मल है।

भावार्थ - सर्वत्र संसार में दो ही चीज मनुष्यों में विशेषरुप से दृष्टिगत होती आ रही है। उनमें से एक का कनाम है गुण, और दूसरे नाम है दौष। इन गुण और दोष में से दोनों या ऐेक-एक व्यक्तियों में अनिवार्य रुप से रहते है। जिनमें दोषों का सद्भाव पाया जाता है उन्हें महर्षियों ने बहिरात्मा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि चारों गतियों रुप भव सागर में गोता खाने वाले जीव कहा है। तथा जो भव्य आत्मायें सद्गुणों से अलंकृत है दोषों का सद्भाव जिनमें नहीं देखा जाता है। आगम की दृष्टि से जो मानवीय गुणों से अलंकृत है उन्हें आचार्यो ने अन्तरात्मा सम्यदृष्टि या मोक्षमार्गी एवं जिनेन्द्र भगवान के लघु नन्दन नाम से प्रतिपादीत किया है।

समस्त दोष अर्थात आठ मद, आठ शांकदि दोष, छह अनायतन और तीन मूढता से रहित इस प्रकार २५ दोषों से रहित सम्यग्दृष्टि भव्य आत्मा होता है। कदाचित चारित्र मोहनिय कर्म के तीव्र उदय से चाहता हुआ भी लेश मात्र भी संयम अर्थात नियम अत पूर्वक चारित्र को ग्रहण नहीं कर पाये फिर भी निद र्ोष सम्यग्दर्शन के प्रभ्ांव से स्वर्गो के देव और इन्द्रों द्वारा इनको प्रशंसा एवं वन्दना आदि की जाती है।

सम्यग्दृष्टि जीव की लीला कूछ विचित्र ही होती है। वह गृहस्थ अवस्था में रहकर भी घर गृहस्थी के चक्कर में अनुरक्त नहीं होता। जिस प्रकार जल में रहकर भ कमल जल से ऊपर रहता है, इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव घर पर रहकर

भी सबसे प्रथक रहता है। जिस प्रकार वेश्या की प्रीति मात्र पैसा कमाने के उद्देश्य से लागों के प्रति देखी जाती है, उसी प्रकार सम्यग्दष्टि की प्रीती मात्र लोकाचार का पिर्वाह करने के लिए होती है, जैसे कीचड में पडा हुआ स्वर्ण भी सदैव निर्मल रहता है, किटट कालिमा उसका स्पर्श नही कर पाती, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भव्ययात्मा घर गृहस्थी स्त्री, पुत्र, मित्र परिजनों के बीच रहता हुआ भी अवपे कर्तव्य एवं स्वभाव में संलग्न रहकर राग-द्वेष छल कपट, निंन्दा आदि बुराई रुपी कातिमा से निर्लिप्त रहता है।

प्रश्न १. दोष किसे कहते है ?
उत्तर - बुरे कार्य या विचार को दोष कहते है।

प्रश्न २. दोष कितने होते है ?
उत्तर - दोष अनन्त होते है। परन्तु सम्यक्त्व गुण के घातक पच्चीस दोष है।

प्रश्न ३. गुण किसे कहते है ?
उत्तर - सद् पुरुषों के स्वभ्ांव या सरलता मय स्वच्छ निर्विकार रुप अच्छे विचारों को गुण कहते है।

प्रश्न ४. गुण कितने होते है ?
उत्तर - गुण अनन्त होते है परन्तु सम्यग्दर्शन विशेष की अपेक्षा आठ गुण होते है जिप्न्हें सम्यग्दर्शन के अंग भी कहते है।

प्रश्न ५. सम्यग्दृष्टि आत्मा किसे कहते है ?
उत्तर - संसार में निपुत्री जिस प्रकार पुत्र प्राप्ति की लालायत रहती है, निर्धन धन संग्रह के लिए लायत रहता है। ठीक उसी प्रकार जो आत्मा सम्यक चारित्र धारण् करने के लिए तीव्रता से लालायित रहता है उसे ही सम्यग्दृष्टि कहते है।

प्रश्न ६. चारित्र मोहनीय कर्म का उदय क्या सम्यग्दृष्टि जीव को संयम धारण करने से रोक सकता है ?
उत्तर - जिस समय चारित्र मोहनीय कर्म का तीव्र उदय चलता है उस समय सम्यग्दृष्टि जीव का सम्यक् चारित्र की प्राप्ति के लिए किया हुआ पुरुषर्थ् विफल होता है, अतः चारित्र मोहनीय का तीव्र उदय सम्यक् चारित्र धारण करने में बाधक है।

प्रश्न ७. सम्यग्दृष्टि जीव की क्या स्वर्ग के देव पूजा करते है ?
उत्तर - स्वर्ग के देव सम्यग्दृष्टि जीवों की आष्ट द्रव्य से पूजन नहीं करते है मात्र कभी -कभी उनको नमस्कार और उनकी सहायता करते है। इसे ही पूजन को तो कोई आपत्ति नहीं है।

प्रश्न ८. क्या घर में रहकर भी कोई घर गृहस्थी से विरक्त रह सकता है ?
उत्तर - भेद विज्ञान के बल से जिसने निज को निज और पर को पर यथार्थ रुप से जान लिया है ऐसे भव्यात्मा घर में रहते हुए भी गृहस्थ्ी के व्यामोह से विरक्त रह सकते है। जैसे- भरम्र चक्रवर्ती, सेठ सुदर्शन आदि।

सम्यग्दृष्टि कहॉ नहीं चाता

प्रथम नरक बिन षड भू ज्योतिष, वान भवन षंड नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यग्धारी।।
तीन लोक तिहुँ काल मॉहि नहिं, दर्शन सों सुखकारी।
सकल धर्म को मूल यही, इस बिना करनी दुखकारी।। १६।।

अन्वयार्थ् - (प्रथ्ंम नरक बिन षड भू) सम्यग्दृष्टि जीव पहले नरक के अतिरिक्त शेष छह नरकों में नहीं जाता (थावर विकलत्रय पशु में सम्यग्धारी नहिं उपजत) स्थावर , विकलत्रय तथा पशु योनि में भी सम्यग्दृष्टि जीव मर कर उत्पन्न नहीं होता (भवन वान ज्योतिष) भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्ी देवों में भी नहीं जाता (षंढ नारी) नपुंसक और नारी पर्याय में नहीं जाता (तीन लोक तिहूॅं काल माहिं) तीनों लाकों और तीनों कालों में (दर्शन सों सुखकारी नहिं) सम्यग्दर्शन जैसा सुख देने वा कोई नहीं् है (सकल धर्म को मूल यही) यह सम्यग्दर्शन (मोक्ष मार्ग रुप) समस्त धर्मो का मूल है (इस बिन करनी दुखकरी) सम्यग्दर्शन के अभाव में सभ्ीं क्रियाकाण्ड दुख जनक ही है।

भावार्थ - सम्यग्यदृष्टि जीव ने सम्यक्त्व सहित मरण करके अगर पूर्व में नरक आयु का बंध कर लिया है। और उसके अनन्तर सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हुई है तो मात्र प्रथम नरक में उत्पन्न हो सकता है। जैसे-राजा श्रेणिक आदि। नरकों की छह भूमियों में सम्यग्दर्शन के साथ कोई भी जीव उत्पन्न नहीं होता। सभी प्रकार के भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों में भी सम्यदृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता। नपुंसक और सभी जाति की स्त्री पर्याय तथ्ंा स्थावर विकलत्रय पशुओं में भ्ीं सम्यग्दृष्टि जीव जन्म नहीं जेता सम्यग्दृष्टि जीव जन्म नहीं लेता। सम्यग्दृष्टि का जन्म दरिद्री नीच कुल आदि पर्यायों में नही होता है। उसका जन्म सदैव उत्कृष्ट देव, राजा, महाराजा आदि सर्व सुखों से सम्पन्न उत्तम पर्याय में ही होता है।

मोक्ष मार्ग में सर्वोपरि स्थान सम्यग्दर्शन का है। सम्यक्दर्शन की महिमा अचिन्त्य है। अधो, ऊर्ध्वो और मध्य इस प्रकार तीनों लोकों में और भूत भविष्य वर्तमान इस प्रकार तीनों कालों में भव्य जीवों के लिए सम्यग्दर्शन जैसा सुखानुभव कराने वाला कोई विश्व में दूसरा प्रिय मित्र नहीं है। धर्म की आधार शिला यह सम्यग्दर्शन ही है। सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान और चारित्र का कोई महत्व नाहीं है। मात्र क्रियाकाण्ड आकुलता एवं राग द्वेष बढाने में ही निमित्त बन सकता है। आत्म शान्ति में नहीं। आत्मशान्ति तो सम्यग्दर्शन केसाथ ज्ञान और चारित्र के परिपालन से ही सम्भव है।

प्रश्न १. क्या नरक सात होते है ?
उत्तर - नरक सात नहीं होते, नरकों की पृथ्वी सात होती है। नरकों की संख्या चौरासी लाख हे।

प्रश्न २. नरकों का संख्या चौरासी लाख किस प्रकार है ?
उत्तर - प्रथ्ंम पृथ्वी में ३० लाख, दुसरी में २५ लाख, तीसरी में १५ लाख, चौथ्ीं में १० लाख, पांचवी में ३ लाख , छठवीं में ५ कम १ लाख , सातवीं में ५ नरक है। इस प्रकार सातों पृथ्वियों में मिलाकर सातों नरकों की संख्या चौरासी लाख, होती है। इन नरकों की विवेचना कहीं कहीं बिलों के नाम से मिलती है।

प्रश्न ३. सम्यग्दृष्टि जीव कहॉ-कहॉ नहीं जाता ?

उत्तर - अन्तिम ६ नरक भूमि पर, भवनत्रय, नपुसंक , स्त्री, स्थावर, विकलत्रय, हीनायु, दरिद्री आदि हीन पर्यायों में सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्न ४. सम्यग्दृष्टि जीव मरणोपरान्त कहॉ कहॉ जाता है ?
उत्तर- सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्ग में देव होता है। अगर पूर्व में हो आयु का बन्ध कर लिया है तो प्रथम नरक एवं भोग भूमि में भी जा सकता हैं

प्रश्न ५. हीन पर्यायों में सम्यग्दृष्टि का जन्म क्यों नहीं होता ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन के प्रताप से सम्यग्दृष्टि जीव उस सातिशय पुण्य का संचय कर लेता है जो नियम से अद्गति उत्तम सद् पर्याय में ही जीव को ले जाता है , अर्थात ये सम्यग्दर्शन की ही महिमा है।

प्रश्न ६. क्या इन हीन पर्यायों में सभी सम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते ?
उत्तर - इन सभी हीन पर्यायों मैं सम्यग्दर्शन सहित किसी भी जीव का जन्म नहीं होता। इन पर्याय में सबल निमित्त मिलने पर या पूर्व संस्कारों के बल से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ती की अपेक्षा से इन हीन पर्यायों में भी सम्यग्दृष्टि जीव संभव नहीं है।

प्रश्न ७. सम्यग्दर्शन को धर्म का मूल क्यों कहां ?
उत्तर - जैसे बिना जड के वृक्ष नहीं होता, बिना नीव के मकान नहीं बनता,उसी तरह बिना सम्यग्दर्शन के ज्ञान चारित्र और मोक्ष रुपी महल नहीं बनता। इसीलिए धर्म का मूल सम्यग्दर्शन को कहा है।

.१११.

सम्यग्दर्शन की महिमा एवं मनुष्य पर्याय की दुर्लभता

मोक्ष महल की परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै सो दर्शन, धारों भव्य पवित्रा।।
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे।
यह नर भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहीं होवे।।

अन्वयार्थ् - (मोक्ष महल की परथम सीढी) सम्यग्दर्शन मोक्ष महल की पहली सीढी है (या बिन ज्ञान चरित्रा सम्यक्तवा लहै न) सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान सम्यक्त्वपने को (यथार्थता को) प्राप्त् नहीं होता अर्थात सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र नाम नहीं पाते (सो पवित्रा दर्शन भव्य धारो) ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को हे भव्यात्माओ। धारण करो (दौल) कविवर दौलतराम स्वयं को संबोधन करते है (सयाने सुन समझ चेत) हे चतूर आत्मन। जिनेन्द्र भगवान के वचनामृत को सून कर समझ्ते हुए सचेत हो जाओ (काल वृथा मत खोवे) समय को व्यर्थ मत जाने दो (जो सम्यक नहि होवे) अगर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई तो (यह नर भव फिर मिलन कठिन है) इस मनुष्य पर्याय का फिर से मिलना कठिन है।

भावार्थ - महल की मंजिल तक पहुचने के लिये आधर भूत निमित्त सीढियॉ होती है। बिनाउसीढियॉ के किसी भी महल की ऊचाइयों को नहीं छुआ जा सकता। उस मकान की सभी सीढियॉ का आधार प्रथ्ंम सीढी है। अगर प्रथ्ंम सीढी नहो तो निराधार द्वितीय, तृतीय आदि सीढी संभव ही नही, ठीक इसी प्रकार मोक्ष रुपी महल की सम्यग्दर्शन प्रथम सीढी है। सम्यग्दर्शन रुपी प्रथम सीढी के अभ्ंाव समें सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रुपी सीढीयॉ संभव नहीं है, और सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रुपी सीढी के अभाव में मोक्ष महल की ऊचाई को प्राप्त करना सर्वथा असंभव ही है।
अत: इस परम पवित्र सम्यग्दर्शन को अष्ट अंगो को सहित पच्चीय दोषोसे रहित सभी भवात्माको धारण करणा चाहिए।

.११२.

कविवर दौलतराम जी स्वयंके साथ भ्ंव्यात्माओं को संबोधन करते हुऐ कहते है कि हे विवेकी महानुभावा। यह जिनेन्द्र भगवान से संसार समुद्र से तिरने का जो उपाये बताया है, उसे सुन समझ कर सचेत हो जाओ मोक्ष मार्ग पवर चलने के लिये। वृथा समय खोने में कोई सार नहीं है। अगर इस पर्याय में सम्यग्दर्शन रुपी रत्न की प्राप्ति नहीं कर पायी तो इस मनुष्य पर्याय का पुन: मिलना अत्यंन्त कठिन है।

प्रश्न १. सम्यग्दर्शन को मोक्ष महल की प्रथम सीढी क्यों कहा ?
उत्तर - सम्यग्दर्शन रुपी सीढी के बिना सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रुपी सीढी संभव नहीं है। इसलिये सम्यग्दर्शन को मोक्ष महल की प्रथम सीढी कहा है।

प्रश्न २. सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक् नाम क्यों नहीं पाते ?
उत्तर - सम्यग्दर्शन वस्तु के यथार्थ श्रध्दान को कहते है और सम्यक् श्रध्दा बिना ज्ञान और चारित्र में यथार्थता आना संभव नही ह`, इसलिए सम्यग्दर्शन के अभावमें ज्ञान और चारित्र सम्यग्ज्ञान औश्र सम्यक् चारित्र नाम नहीं पाते।

प्रश्न ३. सम्यग्दर्शन के साथ में पवित्र विशेषण क्यों लगाया ?
उत्तर - आठ अंगो से सहित और पच्चीस दोषों से रहीत दिखाने के लिये पवित्र शब्द का प्रयो ग किया है।

प्रश्न ४. दौलतराम जी ने किसे संबोधित किया है ?

उत्तर - दौलतराम जी ने स्वयंअपने आपको, एवं चतुर भव्यात्माओं को संबोधित किया है की समय रहते ुए सम्यग्दर्शन रुपी रत्न को धारण करो।

प्रश्न ५. सम्यग्दर्शन धारण नहीं करने से क्या हानि है ?
उत्तर - इस मनुष्य पर्याय में अगर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकी तो पुन: इस मनुष्य पर्याय की प्राप्ति दुर्लभ है।

---

*तृतीय ढाल का सारांश *

दो से तीसरा नम्बर जुडा हुआ है, उसी प्रकार दुसरी ढाल के भाव से तीसरी ढाल का भी संबंध स्वाभाविक संश्लेष पूर्ण है, क्योंकि दूसरी ढाल के अन्त में पंडित जी संबोधित करते है इ संदर्भ जग जाल भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत निज आतम सुपाग संसार विषयाभिलाषा रुप सुख भगम है ऐसा जानकर त्यागो और अपने आत्म वैभव में निमग्प हो जाओ क्योंकि आत्मा की भलाई सुखमय दशा है, वह भी तभी सत्य है जब आकुलता न हो। संसार का प्रत्येक क्षण संशय, विमोह औश्र विभ्रम रुप आकुलता से भंरा है। इससे विपरीत (संसार बन्धन से उल्टा) मोक्ष में निराकुल मुख है। अत: संशय विमोह विभ्रम से दृष्टि बदलकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्-चरित्र को जीवन में आपनाओ यही मोक्ष मार्ग ह`। ऐसा मार्ग दो प्रकार से कहा गया है। जो शुध्दात्म परिपूर्ण अखण्ड द्रव्य रुप है वह निश्चय मोक्षमार्ग और ऐसे स्वरुप काजो कारण यानि अंश रुप या सहयोगी वह व्यवहार मोक्षमार्ग है, अर्थात पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से रहित मात्र निजात्म द्रव्य

क्षेत्र, काल, भाव की लगन तथा निजात्म द्रव्य में ही तन्मयता, स्थिरता निश्चय मोक्षमार्ग और इसकी प्राप्ति में जो कारण है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। जो जीव, अजीव , अस्त्रव, बंध, संवर, निर्जरा औश्र मोक्ष इन सातों तत्वों को यथार्थ रुप से जानकर श्रध्दान करने से होता है। अत: दृढ विश्वास करने के लिए सही रुप इस तरह जानना-

जीव तत्व - बहिरात्मा- शरीर आत्मा को एक मानने वाला।

अन्तरात्मा - शरीरादी से भिन्न आत्म स्वरुप समझकर स्वाभाविक दशा के साधक।

परमात्मा - घातिया एवं अघातिया कर्म मल से विमुक्त निज पुरुषार्थ् द्वारा स्वाभाविक सहज शुध्द दशा को प्राप्त।

अजीव तत्व - पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं कालादि अचेतन अजीव द्रव्य है। ज्ञान दर्शनादि रहित इनके भी अनेक प्रतिभेद है।

आस्त्रव तत्व - आत्म स्वरुप से भिन्न परावलम्बी श्रध्दान मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय योग रुप भाव ही आस्त्रव है।

बन्ध तत्व - राग-द्वेषादि विकार के कारण आत्म प्रदेशों के साथ् पुद्‌गल रुप जड कर्मो का एकत्रित होना बन्ध है।

संवर तत्व - समता से इन्द्रिय निग्रह पूर्वक स्वभाव सम्मुख दृष्टि से परलक्ष्य तथा विकारी भावों का निरोध ही संवर है।

निर्जरा तत्व - विषयाभिलाषा रहित परिणाम से द्रव्य कर्म समाप्ति की सन्तति को निर्जरा कहते है।

.११५.

मोक्ष तत्व - भाव कर्म-राग द्वेष, द्रव्य कर्म - ज्ञानावरणादि और नौ कर्म औदारिकादि शरीर रहित यथार्थ अवस्था की प्राप्ति अर्थात पूर्ण शुध्द स्वरुप की उपलब्धि हो मोक्ष तत्व है।

इस प्रकार की सच्ची तत्व श्रध्दा सम्यक्त्व जागृति का उपाय है तथा जिन्द्र देव, निर्ग्रन्थ गुरु, दयामयी धर्म भी सम्यक्त्व में कारण है। जो आठ लक्षणों से युक्त है और पच्चीस दोषो से रहित है वही सच्चा सम्यग्दर्शन है। यही निर्दोष सम्यक्त्व उभंय लोक में प्रशंसनीय, पूज्यनीय होता है। सम्यग्दृष्टि जीव का आचरण ही निराला होता है। मिथ्यात्व, अज्ञान मिट जाने से विराग, ज्ञान में प्रकर्षता विशेष हो जाती हूँ। यही कारण है कि आयु के अन्त में दीर्घ दु:ख के स्थान भयावह नरक, भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी देव पर्याय, नपुंसक एवं स्त्री पर्याय तथ्ां स्थावर और विकलत्रयादि पशु पर्याय में उत्पन्न नहीं होता। अत: तीनों जोक में सदैव सच्चे सुख की जड अथवा अनन्त सुख का मूल उपाय सम्यग्दर्शन है, जिसके अभाव में ज्ञान और चारित्र खोखले कहे जते है। अत: हे भव्य जीवों ! व्यर्थ अपनी आयु समाप्त मत करो। जागो, समझो, यदि सम्यग्दर्शन की उपलब्धि नहीं हुई तो इस मनुष्य पर्याय की पुन: उपलब्धि दु:साध्य है।

सम्यक्दर्शन रत्न ही सब रत्नों में सार।
अंग सहित निर्दोष जो, गहे लहे भव पार।।

ओम शान्ति

.११६.

चतर्थ ढाल

सम्यग्ज्ञान सु नेत्र है, चरण आचरण जान।
यथा शक्ति शिवपथ चढो, तो सुख मिले महान।।

परम हितकारी सम्यग्दर्शन हो जाने पर क्या कर्तव्य है ?

सम्यक् श्रध्दा धारी पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व पर अर्थ बहु धर्म जुत, जो प्रगटा वन भान।।

अन्वयार्थ - (सम्यक् श्रध्दा धारी) यथार्थ श्रध्दान करके (पुनी) फिर (इसके अनन्तर) (सेवहु सम्यग्ज्ञान) सम्यग्ज्ञान का सेवन करना चाहिए (स्व-पर) अपने और पराये (बहु धर्म जुत अर्था) अनन्त धर्म युत पदार्थ को (जो) वह सम्यग्ज्ञान (प्रगटवन भान) प्रकाशित करने के लिए सूर्य के समान है।

भावार्थ - सामानतया वस्तु का ज्ञान होने पर भी वस्तु के प्रति जब तक यथार्थ आस्था उत्पन्न नहीं होती तब तक वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता। अत:सात तत्व एवं षट् द्रव्य मय तीनाकं लोकों में अवस्थित वस्तु व्यवस्था की जिनेंन्द्र भगवान द्वारा जैसी विवेचना की गई है उसके अनुरु ही श्रध्दान करके निरन्तर स्वरुप प्रकाशक सम्यग्ज्ञान की उपासना करना चाहिऐ। सम्यग्ज्ञान निजात्म स्वरुप और अनन्त धर्मो से युक्त समस्त पदार्थो के स्वरुप को सूर्य के समान प्रकाशमान अर्थात स्पष्ट रुप से बताने में सक्षम है। इसलिए सम्यग्दर्शन के साथ-साथ सम्यग्ज्ञान की महती आवश्यक्ता है , यदि सुखी् निर्दोष जीवन बनाना है तो।

.११७.

प्रश्न १. सम्यक् श्रध्दा किसे कहते है ?

उत्तर - वस्तु स्वरुप जैसा हे उसकी उसी प्रकार आस्थ्ंा करने को सम्यक श्रध्दा कहते है।

प्रश्न २. सम्यग्ज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर - वस्तु स्वरुप जैसा है उसे उसी रुपउ से जानना सम्यग्ज्ञान है।

प्रश्न ३. वस्तु स्वरुप कैसा है ?
उत्तर - वस्तु स्वरुप अनन्त धर्मात्मक शाश्वत अनेकान्त मय है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में कार्य कारण का भेद

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ,
लक्षण श्रध्दा जान, दुहू में भेद अबाधौ।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई,
युगपत् होते हूॅ, प्रकाश दीपकतें होई।। १।।

अन्वयार्थ् - (सम्यक् साथै ज्ञान होय) सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान होता है (पै) फिर भी (भिन्न अराधौ) सम्यग्ज्ञान की विवेचना पृथक की है, (श्रध्दा लक्षण जान) श्रध्दा और ज्ञान दोनो ंका लक्षण है (दुहु में भेद अबाधौ) दोनों में भेद परस्पर बाधा से रहित है। (सम्यक् कारण जान) सम्यग्दर्शन कारण है (ज्ञान कारज है सोई) सम्यग्ज्ञान उसका कार्य है। (युगपत् होते हूॅ) एक साथ होने पर भी (प्रकाश दीपकतें होई) दीपक और प्रकाश की तरह भिन्नता है।

भावार्थ - जिस प्रकार लोक में देखा जाता है कि प्रकाश सुर्य के उदय से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार वस्तु स्वरुप की आस्थ्ंा के साथ जिस समय सम्यग्दर्शन रुपी सुर्य

का उदय होता है, उसी समय सम्यग्ज्ञान रुपी प्रकाश का प्रादुर्भाव होता है फिर भी कार्य कारण या संज्ञा को अपेक्षा दर्शन और ज्ञान की विवेचना भिन्न रुप से की है। अर्थात सम्यग्दर्शन कारण और सम्यग्ज्ञान कार्य हुआ।

सम्यग्दर्शन का लक्षण सत् श्रध्दान और सम्यग्ज्ञान का लक्षण सत् रुप जानना है। दर्शन और ज्ञान के ये दोनों भेद परस्पर विवाद और बाधा से रहित है। सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है। यद्यपि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान इन दोनों गुणों की उत्पत्ति एक समय में ही होती है परन्तु जैसे लोक में यह कहा जाता है कि प्रकाश दीपक से हुआ है, इसी प्रकार यहां पर सम्यग्दर्शन के बाद सम्यग्ज्ञान की विवेचना की गई है।

प्रश्न १. सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनो ंएक ही है क्या ?
उत्तर - सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ्ं में उत्पन्न होते है, परन्तु अपने-अपने लक्षण या गुणों की अपेक्षा दोनों भिन्न भिन्न है। सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है।

प्रश्न २. सम्यग्ज्ञान को सम्यग्दर्शन के उपरान्त सेवन करने को क्यों कहा ?
उत्तर - सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के बाद ही ज्ञान में सम्यक् पना आता है , अत:
सम्यग्दर्शन के अनन्तर ही ज्ञान स्व-पर प्रकाशक बनता है।

प्रश्न ३. क्या सम्यग्दर्शन के पूर्व जीव के ज्ञान नहीं होता ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन से पूर्व ज्ञान तो प्रत्येक जीव के रहता है। यहां तक कि सुक्ष्म निगोदिया जीवों में भी मन: पर्याय नाम का ज्ञान रहता हूे, परन्तू सम्यग्दर्शन से पूर्व जीव के सामान्य ज्ञान ही पाया जाता है, मोक्षमार्ग में जिसका कोई महत्व नहीं है।

प्रश्न ४. क्या सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन से पूर्व नहीं हो सकता ?
उत्तर - वस्तु स्वरुप के यथार्थ् श्रध्दान के बिना यथार्थ ज्ञान असम्भव है अत: सम्यग्दर्शन से पूर्व सम्यग्ज्ञान किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। वास्तविकता तो यह है कि दर्शन और ज्ञान दोनो में समीचीनता एक समय में ही आती है। दीपक और प्रकाश की तरह , मात्र अपेक्ष से क्रम वर्णित है।

प्रश्न ५. लक्षण किसे कहते है ?
उत्तर - जिससे वस्तु की पहिचानउ होती है उसे लक्षण कहते है।

प्रश्न ६. कारण किसे कहते है ?
उत्तर - हेतु अर्थात जिसके द्वारा कार्य हो उसे कारण कहते है।

प्रश्न ७. कार्य किसे कहते है ?
उत्तर - उद्देश्य की पूर्ति को कार्य कहते है।

ज्ञान के भेद, परिक्ष और प्रत्यक्ष का लक्षण

तास भेद दो है परोक्ष, परतछि तिन माहीं।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतै उपजाही।।
अवधि ज्ञान मन पर्जय, दो है देश - प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जाने जिय स्वच्छा।। २।।

अन्वयार्थ - (तास भेद दो है) उस सम्यग्ज्ञान के दो भेद है (परोक्ष प्रत्यक्ष) उनमें से एक परोक्ष और दुसरा प्रत्यक्ष (तिनमॉहि) सम्यग्ज्ञान में (मतिश्रुति दोय परोक्ष) मतिज्ञान श्रुतज्ञान ये दोनों परोक्ष ज्ञान है। (अक्ष मन तै उपजाहिं) इन्द्रिय और मन की
सहायता से मतिज्ञान और श्रुतज्ञान पदार्थो को जानते है। (अवधि ज्ञान मन पर्जय) अवधि ज्ञान मन पर्यायज्ञान (दो है देश प्रतच्छा) यह दोनों एक देश प्रत्यक्ष है (द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये) द्रव्य क्षेत्र के परिमाण को लिए हुये (जिय स्वच्छा जाने) अवधि, मन पर्यय ज्ञानी जीव स्पष्ट रुप से जानता है।

भावार्थ - ज्ञान आत्मा का अभिन्न विशेष गुण है। इस ज्ञान गुण के पर्याय रुप से पांच भेद आगम में प्रतिपादित है। मति, श्रुत, अवधि , मन: पर्यय और केवलज्ञान। ये पांचो सम्यक् रुप से वस्तु स्वरुप को जानने मै प्रमाण है इनमैं प्रथम मतिज्ञान, श्रुतज्ञान परीक्ष प्रमाण है। ये इन्द्रिय तथा मन की साहाता से पदार्थो को जानते है अवधिज्ञान और मन:पर्यय ज्ञान एक देश प्रत्यक्ष ज्ञान है द्रव्यक्षेत्र काल भाव की मर्यादा को लिये हुए ये दोनों ज्ञान रुपी पदार्थ् को स्पष्ट रुप से जानते है।

प्रश्न १. ज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर - किसी भी वस्तु के जानने को ज्ञान कहते है।

प्रश्न २. ज्ञान के कितने भेद है ?

उत्तर - वास्तव में ज्ञान अखण्ड एक ही है परन्तु उसके प्रत्यक्ष, परोक्ष की अपेक्षा से दो भेद किये है एवं सज्ञा और निमित्त की अपेक्षा से मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन: पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान की अपेक्षा पांच भे्ंद है।

प्रश्न ३. परोक्ष ज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर - मन और इन्द्रिय की सहायता से जो ज्ञान पदार्थो को जाने उसे परोक्ष ज्ञान कहते है।

प्रश्न ४. परोक्ष ज्ञान कौन- कौन से है ?
उत्तर - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान है।

प्रश्न ५. एक देश प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर - द्रव्य , क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लिए हुए जो रुपी पदार्थ को स्पष्ट रुप से जानता है उसे एक देश प्रत्यक्ष इ ाान कहते है।

प्रश्न ६. सकल प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर - रुपी, अरुपी सभी पदार्थो का परिपूर्ण जानना सकल प्रत्यक्ष ज्ञान है।

प्रश्न ७. एक देश प्रत्यक्ष ज्ञान कौन-कौन से है ?
उत्तर - अवधि ज्ञान, मन: पर्यय ज्ञान एक देश प्रत्यक्ष ज्ञान है।

प्रश्न ८. सकल प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर -केवलज्ञान को सकल प्रत्यक्ष कहते है।

प्रत्यक्ष ज्ञान की महिमा

सकल द्रव्य के गुण अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता।।
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारन।
इहि परमामृत जन्म जरा मृतु-रोग निवारन।। ३।।

अन्वयार्थ - (सकल द्रव्य के गुन अनन्त) समस्त द्रव्यों के अनन्त गुण है (परजाय अनन्ता) अनन्त पर्याय है (एकै काल)एक समय में ही (प्रगट) स्पष्ट रुप से (केवल भगवन्ता जानै) केवली भगवान जानते है (ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण) ज्ञान के समान अन्य कोई विश्व में सुख का कारण नहीं है। (इहि परमामृत) यह ज्ञान सर्व श्रेष्ठ अमृत है (जन्म जरा मृतु रोग निवारण) जन्म-जरा और मृत्यु रुपी रोगों को विनष्ट करने वाला है।

भावार्थ - जीव पुद्‌गल धर्म अधर्म आकाश काल यह छहों द्रव्य परिपुर्ण रुप से व्याप्त है , इसलिए द्रव्यों के समूह हो ही लोक कहते है। सभी द्रव्यों के अनन्त गुण है और ्गुणों की अनन्तानन्त पर्याय है। छद्मस्थ ज्ञानी उन सभी द्रव्यों के अनन्त गुण और पर्यायों को पूर्ण रुप से जानने में सक्षम नही है। सर्वज्ञ वीतरागी हितोपदेशी केवलज्ञानी भगवान समस्त द्रव्यों के साथ-साथ उनके अनन्त गुण और पर्यायों को एक ही समय में स्पष्ट रुप से जानते है या यह भी कहा जा सकता है कि केवलो भ्ंगवान के जानने देखने का विकल्प पुर्णत: समाप्त है। अत: उनका ज्ञान स्फटिक से भी निर्मल हो चुका है,इसलिए सारे विश्व के पदार्थ उनके ज्ञान में दर्पणवत् स्वयं प्रतिबिम्बित होते है, ज्ञान के विषय बनते है, ज्ञेय बनते है।

अनादि काल से यह प्राणी सुख के साधन जुटाने में अहर्निश प्रयत्नशील है, परन्तु आज तक सच्चे सुख की अनुभूति करणे में विफल रहा है, क्योंकी आचार्यो ने सच्चे सुख का कारण ज्ञान बताया है और अभी तक प्रयत्न चलता रहा है। कि सुख की प्राप्ति विषय वासनाओं की पूर्ति से संभ्ंव है। यह निराधार भ्रम है। ज्ञान से बढकर विश्व में अन्य पदार्थ् सुख का कारण नहीं है। यह ज्ञान परम अमृत स्वरुप है और यही जन्म, जरा, मृत्यु जैसे भ्ंयंकर रोगों की परिसमाप्ति करने वाला है।

प्रश्न १. द्रव्य किसे कहते है ?

.१२३.

उत्तर - परिणमन शील गुण एवं पर्यायों की अभिन्नता को द्रव्य कहते है।

प्रश्न २. गुण किसे कहते है ?
उत्तर - अपनी अपनली विशेषताओं को लिये हुए जो द्रव्य में अभिन्न रुप से रहते है उन्हें गुण कहते है।

प्रश्न ३. पर्याय किसे कहते है ?
उत्तर - गुणों के कार्य को पर्याय कहते है।

प्रश्न ४. क्या द्रव्य गुण, पर्याय अलग अलग है ?
उत्तर - शुध्द निश्चय नय से द्रव्य गुण पर्याय का विकल्प नहीं है मात्र अखण्ड सत् हे, परन्तु व्यवहार नय से अखण्ड द्रव्य में गुण पर्याय की विवेचना की जाती है।

प्रश्न ५. केवली भगवान तो वीतरागी है वह अनन्त द्रव्य गुण पर्यायें को कैसे जानते है ?
उत्तर - अनन्त द्रव्य गुण पर्यायों को जानने का विकल्प केवली भगवान के हे ही नहीं। जिस प्रकार दर्पण के समक्ष जों पदार्थ होते है वह स्वयमेव दर्पण में प्रतिबिम्बित होते है, उसी प्रकार केवली भगवान के ज्ञान दर्पण में चराचर समस्त पदार्थ स्वयमेव प्रतिबिम्बित होते है।

प्रश्न ६. क्या केवली भगवान का ज्ञान सारे लोक में व्याप्त है ?
उत्तर - लोक में जितने ज्ञेय है उन सबको जानने की अपेक्षा ज्ञप्ति शक्ति से ज्ञेयों के बराबर ही केवली भगवान का इ ाान है, इसलिये सभी पदार्थ केवली भगवान के ज्ञान का विषय सहज में बन जाते है।

.१२४.

प्रश्न ७. ज्ञान से बढकर अन्य कोई सुख का कारण क्यों नहीं ?
उत्तर - ज्ञान हेयोपादय पदार्थो को बताकर मोक्ष सुख को प्राप्त कराने वाला है , इसलिये सर्वश्रेष्ठ सुख का कारण इ ाान है।

प्रश्न ८. ज्ञान के बिना जन्म, जरा, मृत्यू रोग नष्ट हो सकते है क्या ?
उत्तर - जन्म, जरा, मृत्यू आदि रोगों को मुलतः समाप्त करने के लिए सम्यग्ज्ञान ही औषधि है। बिना सम्यग्यज्ञान के चारित्र कार्यकारी नहीं है। अतः सम्यग्ज्ञान के चारित्र कार्यकारी नहीं है। अतः सम्यग्ज्ञान के अभाव में जीवन निरर्थक ही हे।

त्रिगुप्ति युक्त आत्म ज्ञान की महिमा

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरें जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्तितै सहज टरै ते।।

मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।। ४ ।।

अन्वयार्थ - (कोटि जन्म तप तपै) करोडो जन्मा` तक तपस्या करने पर भी (ज्ञान बिन कर्म झरें जें) ज्ञान के बिना जो कर्म झरते है (ज्ञानी के छिनमांहि) ज्ञानी मुनिराज के क्षण मात्र में ही (त्रिगुप्ति तें) मन, वचन, काय तीनों की एकाग्रता से (सहज टरै ते) उतने कर्म आससानी से झर जाते है (मुनि व्रत धार) मुनिराज के पालन योग्य महाव्रतें को धारण करके (अनन्त बार ग्रीवक उपजायो) अनन्त बार सालह स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयकों में उत्पन्न हुआ (पै) फिर भी (निज आतम ज्ञान बिना) शु्ध्दात्मा के ज्ञान बिना (लेश सुख न पायो) लेश मात्र भी सुख प्राप्त नहीं किया।

भावार्थ - ख्याती लाभ की चाह में डुबे हुये संसार में अगणित अज्ञानी आत्मा कायक्लेश मात्र अज्ञान तपों की मोक्ष का कारण मानकर निरन्तर तपते चले जा रहे है , किन्तु वास्तविक तपों के अभाव में कर्मो की निर्जरा सम्यक् रुप से संभव नहीं है। करोंडो जन्म तपस्या करने पर भी बिना सम्यग्ज्ञान के जितने कर्मो की निर्जरा होती है, उतने कर्मो की पिर्जरा सम्यग्ज्ञान के साथ तीन गुप्ति पूर्वक क्षण मात्र में होती है।

अज्ञान के साथ महाव्रतों को धारण और पालन करके अनेकों बार ग्रैवेयक तक की ऊचाइयों को प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी निज शु्ध्दात्म ज्ञान के अभाव में सच्चे सुख की अनुभूति करने में विफल रहा। स्वर्ग और ग्रैवयकों के इन्द्रिय जन्य सुख सम्यग्ज्ञान के अभाव से सुखाभास ही है। ज्ञानी आत्मा स्वर्ग और ग्रैवेयक तोक्या सर्वार्थसिध्दि के सुखों से भी सन्तुष्ट नहीं है। शान्ति की लहर इन्द्रिय जन्य भागों में कहॉ ? ज्ञानी तो स्वात्मानुभूति का रसिक होता है।

प्रश्न १. ऐसे किसी मुनि का नाम बताइये जिसने करोडों जन्म तपस्या की हो ?
उत्तर - करोडों जन्म तपस्या करने वाले किसी मुनि का नाम आगम में नहीं है। अधिक से अधिक इकतीस बार मुनि बनके तपस्या की जा सकती है, बत्तीसवी बार नियम से मोक्ष जायेगा ही जायेगा।

प्रश्न २. करोडों जन्म तपस्या करने वाली बात झुठी है क्या ?
उत्तर - करोडों जन्म तपस्या करने वाली बात झुठी नहीं है। अभव्य मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की अपेक्षा सम्यग्ज्ञान का महत्व दर्शाने के लिये ग्रन्थकार ने यह बात ल्रिखी है।

प्रश्न ३. तपस्या मात्र से निर्जरा संभव है क्या ?
उत्तर - सम्यग्ज्ञान के अभाव में तपस्या मात्र से संवर पूर्वक निर्जरा नहीं होती, जो भी अकाम निर्जरा होती है वह कालान्तर में संसार वर्धक है।

प्रश्न ४. निर्जरा ज्ञानी के होती है क्या ?
उत्तर - मोक्षपुरी में पहुचाने वाली निर्जरा ज्ञानी मुनिराजों के ही होती है।

प्रश्न ५. संवर पूर्वक निर्जरा मुनिराजों के ही क्यों होती है ?
उत्तर - ज्ञावक अवस्था में मन, वचन, काय तीनों योगों की एकाग्रता परिपूर्ण संभव नहीं है। मूनि दशा में महाव्रतों के साथ तीनों गुप्तियों की एकाग्रता से अन्तमुहूर्त में ही अनन्त जन्मों संचित कर्मो की निर्जरा हो जाती है।

प्रश्न ६. आत्मज्ञान के अभाव में कौन-कौन मूनि ग्रैवेयक गये है ?
उत्तर - आत्मज्ञान के अभााव में मात्र तपउ से ग्रैवेयक गये हों ऐसे किन्हीं मुनिराज का नाम शास्त्रो में नहीं आया है।

प्रश्न ७. मुनि पद अधिक से अध्धिक ३२ बार धारण किया जा सकता है, तो अनन्त बार ग्रैवेयक जाना कैसे संभव है ?

उत्तर - मुनिव्रत और मुनिपद में जमीन आसमान का अन्तर है। मुनिपद अर्थात प्रत्याख्यान कषाय के अभाव में छठवां सातवां गुणस्थान आदि तथा मुनिव्रत मात्र महाव्रतों का पालन अर्थात मुनिराजों के व्रत मात्र का पालन करने वाला ३२ से अधिक बार भी मुनी बनकर ग्रैवेयक जा सकता है। मुलतः बात आत्म ज्ञान का महत्व बताने के लिए है।

प्रश्न ८. आत्म ज्ञान के बिना सुख नही मि ल सकता क्या ?
उत्तर - मुनिव्रत अंगीकार करने पर भी आत्मज्ञान के अभाव में निजान्दानउसंभव नहीं है। ऐसा आत्मा मात्र ख्याति लाभ या स्वर्ग सुखों को ही प्राप्त करके आनन्दित होता है।

प्रश्न ९. ज्ञान के साथ त्रिगुप्ति को क्यों लिया है ?
उत्तर -कर्मो की निर्जरा अकेले ज्ञान से नहीं होती है। ज्ञान के साथ् में चारित्र की निर्मलता होने पर ही कर्मो की निर्जरा होती है। त्रिगुप्ति शब्द सम्यक् चारित्र का प्रतीक है।

निर्दोष ज्ञान और मनुष्य पर्याय की दुर्बलता

तातै जिनवर कथित तत्व, अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजै।।
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवो जिनवानी।
इह विधि गये न मिलै सुमणि, ज्यों उदधि समानी।। ५।।

अन्वयार्थ - (तातै जिनवर कथित) इसलिये जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित (तत्व अभ्यास करीजै) जीवादि तत्वों का अभ्यास, मनन करना चाहीये (संशय विभ्रम मोह त्याग) सन्देह, विपर्यय, अनध्यवसाय को त्याग कर (आपो लख लीजे) अपने शुध्दात्म स्वरुप की पहचान करो (यह मानुष पर्याय) यह मनुष्य पर्याय (सुकुल) मोक्ष प्राप्ति में वाहय साधक उत्तम कुल (जिनवानी सुनिवों) और वीतराग प्रभु की सच्ची वाणी का श्रवण (इह विधि गये न मिलै) से तीनों यदि हाथ् से निकल गए तो फिर इनका मिलना इस प्रकार से दुर्लभ है (सुमणि ज्यों उदधि समानी) जैसे-अच्छा रत्न समुद्र में खो जाने के बाद पुनःमिलना दुर्लभ है।

भावार्थ - एकान्तवादी आज्ञानी मिथ्या मान्यता वालों की वाणी का अनुसरण करके अनन्त भव भवान्तरों से चार गतियों की चौरासी लाख योनियों में अपना परिभ्रमण आज तक होता आ रहा है। अतः संसार सागर से पार होना है तो सर्वज्ञ, वीतरागी, हितोपदेशी जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित जीवादि सात तत्वों को ज्ञेय,हेय, उपादेय, ध्येय रुप से अभ्यास करते हुये संशय, पिर्यय और अनध्यवसाय आदि विपरीत मान्यताओं को परिसमाप्ति कर निज शुध्दात्म स्वरुप की प्राप्ति में संलग्न हो जाओ।

सभी पर्यायों में श्रेष्ठ मनुष्य पर्याय, उसमें भी श्रेष्ठतम मोक्षमार्ग के हेतु लोक प्रशंसनीय उत्तम कुल की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है । उत्तम कुल से भी श्रेष्ठतर जिनेन्द्र भगवान की यथार्थ वाणी का सुनना दुःसाध्य है। जैसे- अत्यन्त परिश्रम के बाद समुद्र से प्राप्त किया हुआ रत्न पुनः समुद्र में विलय हो जाने के बाद मिमलना अत्यन्त कठिन है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य पर्याय उत्तम कुल जिनवाणी का श्रवण छूट जाने के बाद पुनः प्राप्त हो जाना अत्यन्त कठिन है।

प्रश्न १. जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित तत्वों के अभ्यास से क्या लाभ् है ?
उत्तर - रागी द्वेषी जीवों द्वारा प्रतिपादित तत्वोपदेश, सच्चा उपदेश नहीं होता, वह तो कहीं भी अपनी कषाय की पुष्टि कर सकते है किन्तु, वीतरागी भगवान को किसी से राग-द्वेष नहीं है, इसलिये उनके द्वारा प्रतिपादित वस्तु स्वरुप ही अभ्यास योग्य सच्चे सुख का कारण है।

प्रश्न २. संशय, विभ्रम, मोह से क्या हानि है ?

उत्तर - संशय,विभ्रम, मोह युक्त प्राणी को यथार्थ वस्तु स्वरुप समझ में नहीं आता और वस्तु स्वरुप को समझे् बिना संसार दु:खों से पार होना संभव नही है।

प्रश्न ३. संशय किसे कहते है ?
उत्तर - वस्तु स्वरुप में संन्देह करने को (यह ऐसा है या नहीं) संशय कहते है।

प्रश्न ४. विभ्रम किसे कहते है ?
उत्तर - विपर्याय अर्थात उल्टे ज्ञान को विभ्रम कहते है। जैसे ज्ञ्सीप को चांदी जानना।

प्रश्न ५. मोह किसे कहते है ?
उत्तर - अनध्यवसाय अर्थात राग, द्वेष एवं कषाय के वशीभूत होकर हिताहित, विवेक शून्यता और पर में एकत्व बुध्दि को मोह कहते है।

प्रश्न ६. संशय, विभ्रम, मोह के सद्‌भाव में स्व संवेदना होता है क्या ?
उत्तर - संशय, विभ्रम, मोह के त्याग में इन्द्रिय जन्य विषयों का संवेदना ही स्व संवेदन वत् प्रतीत होता है, यद्यिपि स्वसंवेदन, आत्मानुभूति विपर्यय ज्ञान के साथ में कदापि संभव नहीं है।

प्रश्न ७. मनुष्य आदि सभी पर्यायें समान हैं क्या ?
उत्तर - सभी पर्यायों में मनुष्य पर्याय ही श्रेष्ठ है क्योकी अन्य पर्याय से यथार्थ सुख की प्राप्ति नहीं होती।

प्रश्न ८. उत्तम कुल प्राप्ति से क्या लाभ है ?

उत्तर - उत्तम कुल के बिना उत्तम गुणों क विकास संभव नहीं है। उत्तम कुल वहीं है जिसमें सदाचार, अणुव्रत, महाव्रत आदि के साथ मोक्ष मार्ग का अनुसरण किया जाय।

प्रश्न ९. जिनवाणी श्रवण से क्या लाभ है ?
उत्तर - जिनवाणी् सुने बिना हमें निज पर का ज्ञान संभव नहीं है, क्यों की हम छद्मस्थ है। जिनेन्द्र भगवान ने लोक में अवस्थित सभी पदार्थो की जानकर मोक्ष मार्ग का जो उपदेश दिया है, उसे श्रवण किये बिना मोक्ष मार्ग पर चलाना संभव नहीं है। अत: जिनवाणी का श्रवण , मनन जीवन में अत्यन्त आवश्यक है।

प्रश्न १०. इह बिधि गये न मिलै सुमणि ऐसा क्यों कहा ?
उत्तर - मनुष्य पर्याय की दुर्लभता बताने के लिये यह दृष्टान्त दिया है। जिस प्रकार रत्न समुद्र में गिर जाने पर पुन: सहज उपलब्धि संभव नही है , ठीक उसी प्रकार विषय वासनाओं में मानव पर्याय की परिसमाप्ति हो जाने के बाद पुन: सहज सुलभ नहीं है।

सम्यग्ज्ञान की महिमा

धन समान गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रुप भये, फिर अचल रहावै।।
तास ज्ञान को कारन, स्व पर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनौ।। ६ ।।

अन्वयार्थ - (धन समाज) सम्पत्ति और कुटुम्बी आदि (गज बाज) हाथी घोडा (राज)वैभव (तो काज न आवै) यह सभी मोक्ष मार्ग में काम आने वाले नहीं है

(ज्ञान आपको रुप भये) अगर आत्म स्वरुप सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हो जय तो (फिर अचल रहावे) फिर (वह सम्यग्ज्ञान केवल ज्ञान प्राप्ति तक) स्थिर रुप से साथी है (तास ज्ञान को कारण) उस सम्यग्ज्ञान प्राप्ति का कारण (स्व पर विवेक वखानो) निज-पर विवेक भेद विज्ञान कहा गया है।(कोटि उपाय बनाय) करोडो उपाय करके भी (भव्य ताको उर आनो) हे भव्य जीवो ! सम्यग्ज्ञान को हृदय में धारण करो।

भावार्थ - भौतिकता की चकाचौंध में आज हर मानव धन कमाने को सर्वत्र दौड रहा है। देश -विदेश , दिन-रात- नीति-अनीति सभी को एक कर दिया है। पैसा आता देखकर सुख की एक सांस लेता है, परन्ततु दुसरे ही क्षण तृष्णा भडक उठती है और हजार पति को लखपति बनने की, लखपती को करोडपति बनने को आकुलीत कर देती है। लाखों और करोडों की तो क्या अरबों की धन राशि भी मानव जीवन में शान्ति उत्पन्न कराने में सक्षम नही है। समय पडने पर पैसा, समाज, कुटुम्बी, नौकर, चाकर, हाथी , घोडा, राज्य , वैभव कुछभी काम आने वाला नही है। मुटटी बांधकर आने वाला हाथ पसारे चजा जाता है। सारे विश्व में कोई भी सच्चा संगा साथी नहीं है सिवाय सम्यग्ज्ञान के।

सम्यग्ज्ञान साथ मे रहे तो जीवन भर शाश्वत अनन्त काल तक सच्ची सुख शान्ति की तरंगे उत्पन्न करता रहेगा। यह सम्यग्ज्ञान स्व-पर के विवेक से उत्पन्न होता है। हे भव्य आत्माओ। करोडों उपाय करके भी एक बार सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि अपने आप में सम्यक् पुरुषार्थ के बल से अवश्य ही कर लो। सारा जीवन सदैव के लिये आनन्दित हो जायेगा। सफल हो जायेगा नर भव का पाना और निगोद राशि से त्रस पर्याय में आना।

प्रश्न १. धन, समाज, परिजन आदि सच्चे साथी नहीं है क्या ?
उत्तर - लौकिक व्यवहार में धन एवं समाज का अपना महत्व है परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि में धन समाज आदि का कोई महत्व नहीं। यह सभी स्वरुप प्राप्ति मे बाधक ही है।

प्रश्न २. मानव जीवन में ज्ञान का महत्व क्यों है ?
उत्तर - सभी प्रकार की सम्पत्ति तो कुटुम्बी जन बॉट सकते है लुटेरे लूट सकते है, परन्तु ज्ञान एक ऐसी सम्पत्ति है जिसमें न कोई हिस्सेदार है, न चोर आदि का डर है।

प्रश्न ३. ज्ञान के अभाव में क्या सुख शान्ति संभव है ?
उत्तर - लोकेषण में भले ही सब कुछ संभव है, परन्तु सम्यग्ज्ञान के अभाव में कभी भी सु ख और शांति संभव नहीं हे।

प्रश्न ४. मोक्ष मार्ग में ज्ञान उपयोगी है क्या ?
उत्तर - सम्यग्ज्ञान निज-पर भेद विज्ञान बिना नही होता और निज -पर भेद विज्ञान के बिना मोक्ष मार्ग प्रशस्त नही होता। अत: मोक्ष मार्ग में सम्यग्ज्ञान का विशेष महत्व है।

प्रश्न ५. सम्यग्ज्ञान का प्रमुख कार्य क्या है ?
उत्तर - सम्यग्ज्ञान का प्रमुख कार्य है स्व-पर भेद विज्ञान। जो वस्तु जैसी है उसे उसी प्रकार जानना।

प्रश्न ६. सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है क्या ?
उत्तर - अगर सच्ची सुख शांति प्राप्त करने की भावना है, तो सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक ही है। क्योंकि सम्यग्ज्ञान के अभाव में आत्म शांति एवं मोक्ष सुख की उपलब्धि संभव ही नहीं है।

विषय चाह एवं सम्यग्ज्ञान का फल

जे पूरव शिव गये, जांहि अब आगे जे है।
सो सब महिमा ज्ञान तनी, मुनिनाथ कहें है।।
विषय चाह दवदाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घन घान बुझवे।। ७।।

अन्वयार्थ - (जे पूरव शिव गये) जो भव्य जीव पूर्व काल मै मोक्ष गये है (जांहि अरु आगे जै है) वर्त मान में जा रहे है और भविष्य काल में जो मोक्ष को प्राप्त करेंगे (सो सब महिमा ज्ञान तनी) वह सभ‍ महिमा सम्यग्ज्ञान की है (मुनिनाथ कहे है) ऐसा गण्धरों और आचार्यो ने कहा है(विषय चाह दव दाह) विषय चाह रुपी दावानल अग्नि(जगत जन अरनि दझावै) संसार में मनुष्य रुपी जंगल को जलाति आ रही है (तास उपाय न आन) उस अग्नि को बुझाने का कोई दुसरा उपाय नहीं है(ज्ञान घन घान बुझवै) मात्र ज्ञान रुपी मेघ ही इस विषय रुपी अग्नि को शान्त करने में सक्षम है।

भावार्थ - संसार के स्वरुप का भ ल ी भांति परिज्ञान करने वाली अनन्त भव्यात्मायें संसार शरीर भोगों से विरक्त सम्यग्ज्ञान रुपी नौका पर आरुढ होकर संसार समुद्र से पार हो चुकी है और अगणित आत्मायें वर्तमान में द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्मो से हमेशा के लिए विमुक्त होकर मोक्ष सुख से युक्त हो रहीं है तथा आगामी काल में जितने भी निजानन्द की अभिलाषी आत्मा मुक्तिबधु कसे अपनी सहचरी

बनायेंगे, वह सभी सम्यग्ज्ञान के बल से ही अपनें मनोरथों को पूर्ण कर पायेंगे, शाश्वत सुखानुभूति का आनन्द अपने जीवन में ले पायेगे।

संसार के दु:खो से छुटकर मोक्ष सुख की प्राप्ति कराने में सम्यग्ज्ञान का महत्व है, ऐसा पूर्वाचार्यो ने प्रतिपादित किया है। जब जगत में विचरण करने वाले मनुष्यों रुपी जूंगल में विषय कषाय रुपी अग्नि भडक उठती है, तब उसे शान्त करने के लिये विश्‍व में अन्य कोई उपाय नहीं है, मात्र सम्यग्ज्ञान रुपी घनघोर वृष्टि ही सहज में उस विषयाग्नि को शांत करने में सक्षम है।

प्रश्न १. क्या सम्यग्ज्ञान के अभाव में मोक्ष नहीं पा सकते ?
उत्तर - सम्यग्ज्ञान के अभाव में नतो किसी ने मोक्ष प्राप्त किया है, न कर रहा है और न भविष्य में करेगा।

प्रश्न २. शास्त्रों में लिखा है कि अष्ट प्रवचन मात्र का स्वल्प ज्ञान होने पर भी मुनिराज मोंक्ष जा सकते है ?
उत्तर - सम्यग्ज्ञान का मतलब शब्दात्मक श्रुतज्ञान से नही है, निज पर विवेक पुर्वक भेद विज्ञान से है। अष्ट प्रवचन मात्र का यह शब्द ज्ञान है, उनके आत्म ज्ञान में किसी प्रकार की कमी नहीं है।

प्रश्न ३. विषय चाह रुपी अग्नि मनुष्य को कैसे जलाती है?
उत्तर - विषयों की तीव्र चाह ही चिन्ता की गहरी ज्वाला है। जब वह भडक उठती है, तब जीवित मानव को भी जलाकर ध्वस्त कर देती है।

प्रश्न ४. विषय रुपी अग्नि शान्त कैसे हो ?

उत्तर - जंगल में लगी हुई अग्नि को जैसे बरसता हुआ मेघ शांत कर देता है, उसी प्रकार मानव जीवन रुपी जंगल में लगी हुई विषयाग्नि को शान्त करने में सम्यग्ज्ञान रुपी मोघों की वृष्टि ही सक्षम है।

प्रश्न ५. क्या अकेले सम्यग्ज्ञान से सच्चे मोक्ष सुख की प्राप्ति हो जायेगी ?

उत्तर - सम्यग्ज्ञान के साथ में सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता होने पर ही यथार्थ मोक्ष सुख की प्राप्ति होगी, परन्तु सम्यग्ज्ञान के अभाव में दर्शन और चारित्र सम्यक् नहीं होते इसलिए सम्यग्ज्ञान की महिमा कल्पनातीत हैं।

पुण्य पाप में हर्ष विषाद का निषेध

पुण्य पाप फल मांहिं, हरख विलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसें थिर नांई।।
लाख बात की बात यहै, निश्चय उर लाऔ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ।। ८ ।।

अन्वयार्थ - (पुण्य पाप फल मांहि) पुण्य पाप के फल के अन्दर (भाई) हे भव्यात्माओ (हरख विलखों मत) हर्ष एवं विषाद मत करो (यह पुद्गल परजाय) यह पुद्गल की पर्याय है (उपजि बनसें)उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती है (थिर नांई) स्थिर नहीं है (लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ) लाख बात की यह एक बात अपने हृदय में दृढता के साथ धारण करो(जग सकल दन्द-फन्द तोरी) जगत के समस्त दन्द फन्दों को तोडकर(निज आतम ध्याओ) अपनी आत्मा का ध्यान करो।

भावार्थ - अखिल विश्व में प्राणी मात्र के दोनों कर्मो का उदय देखा जा रहा-है पुण्य और पाप। अज्ञानी जीव पुण्य के उदय में खुशी, आनन्दित रहता है और पाप कर्म के उदय में दुखी, अप्रशन्न, अशान्त रहता है, परन्तु सच्चे सुख की प्राप्ति के इच्छुक भव्यात्माओं को आचार्यो ने संबोधित करते हुए कहा है कि हे भाई ! यह पुण्य पाप दोनां ही पुद्गल की पर्यायें है, जो उत्पन्न होकर नष्ट होती है स्थिर नहीं रहतीं। इसिलिये सारभूत लाख बात की एक ही बात आचार्यो ने कही है कि जगत के समस्त दन्द फन्दों को तोडकर अपने शुध्दात्मा का ध्यान करो, अपने आप में समाहित हो जाओ। अपने ज्ञायक स्वभाव में समाहित होकर ज्ञानानन्द में निमग्न हो जाओ।

प्रश्न १. पुण्य किसे कहते है ?
उत्तर - जिसके कारण भौतिक सुखों की प्राप्ति हो एवं आत्मा पवित्र हो उसे पुण्य कहते है।

प्रश्न २. पाप किसे कहते है ?
उत्तर - जिसके कारण भौतिक सुख सामग्री की उपलब्धि न हो एवं जो आत्मा का पतन कराये उसे पाप कहते है।

प्रश्न ३. ज्ञानी की दृष्टि में पुण्य पाप का क्या महत्व है ?
उत्तर - भूमिकानुसार ज्ञानी प्रयत्न पूर्वक पुण्य कार्यो में अभिरुचि लेता है परन्तु उसके फल की इच्छा नहीं करता है और प्रयत्न पूर्वक पाप कार्यो से विरक्त रहता है परन्तु पाप कर्म के उदय में विचलित नहीं होता है अर्थात पुण्य और पाप के फल में ज्ञानी को कदापि हर्ष विषाद नहीं होता है।

प्रश्न ४. पुण्य पाप आत्म स्वरुप है क्या ?

उत्तर - पुण्य पाप दोनों पुद्गल की पर्यायें है, आत्म स्वरुप नहीं।

प्रश्न ५. पुण्य पाप स्थाई रहते है क्या ?
उत्तर - पुण्य और पाप शाश्वत स्थायी नहीं रहतें, उदय में आकर समाप्त होजाते है और पुनः भी बन्ध हो जाता है।

प्रश्न ६. पुण्य पाप दोनों समान है क्या ?
उत्तर - पाप की अपेक्षा पुण्य महान है। सम्यग्दृष्टि का पुण्य परम्परा से मोक्ष का कारण भी है परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से दोनों समान है। पुण्य को सोने की तथा पाप को लोहे की बेडी कहा है।

प्रश्न ७. संसार में सार क्या है ?
उत्तर - संसार में रत्नत्रय रुप वीतराग धर्म ही सार है, इसके अतिरिक्त समस्त विषय कषाय एवं कुटुम्बी जन आदि कदली स्तम्भचत् असार ही हैं।

चरित्र के भेद और अणुव्रते

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरी दिढ चारित लीजै।
एक देश अरु सकल देश, तसु भेद कहीजै।।
त्रस हिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारे।
पर बध -कार कठोर, निन्द नहिं वयन उचारै।।९।।

अन्वयार्थ - (सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि दिढ चारित्र लीजै) सम्यग्ज्ञानी होने के अनन्तर स्थिरता पूर्वक चारित्र को ग्रहण करना चाहिये (तसु) उस चारित्र के (एक देश अरु सकल देश) अणुव्रत और महाव्रत इस प्रकार (भेद कहीजै) दो भेद प्रतिपादित किये है (त्रस हिंसा को त्याग) त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करके(वृथा थावर न संहारै) बिना प्रयोजन के किसी स्थावर जीव को भी कष्ट नहीं पहुचाना (पर बधकार कठोर निन्द)दुसरों को नष्ट करने वाले, कानों को कठोर लगने वाले, लोक निन्दनीय(वयन नहि उचारें)वचन नही बोलना।

भावार्थ - पच परावर्तन शील संसार मैं अनादिकाल से यह भोला प्राणी अज्ञान ंअंधाकार में भटकता आ रहा है। सम्यग्ज्ञान के अभाव में कोई भी आत्मा मोक्ष मार्ग का अवलोकन करने में सक्षम नहीं होता। इसलिए अनेकों यातनाओं के अनन्तर भी, जैसे भी, जाहॉ भी, जिस समय भी ज्ञान की उपलब्धि हो, कर लेना चाहिए और सम्यग्ज्ञान के साथ ही अती चारों से रहित सम्यक् चरित्र को ग्रहण कर लेना चाहिए।

सम्यग्ज्ञान के वाद अगर सम्यक् चारित्र जीवन में नहीं आता तो वह सम्यग्ज्ञान वास्तव में सम्यग्ज्ञान नहीं है, शब्द ज्ञान ही कहा जाता है। सम्यग्ज्ञान उसी का नाम है जिसके साथ पद के योग्य चरित्र अर्थात पर वस्तुओं के त्याग, कषायों के त्याग का अविनाभावी सम्बन्ध है।

सम्यक्चरित्र के आचार्यो ने अणुव्रत, महाव्रत के भेद से दो भेद किये है। यहॉ पर अणुव्रतों की कुछ झलक इस प्रकार है। त्रस जीवों की हींसा का त्याग करके, बिना प्रयोजन के किसी भी स्थावर जीव को कष्ट न पहुंचाना अहिंसा अणुव्रत है और किसी भी प्राणीके घातक कठोर, आगम तथा लोक के अनुसार निन्दनीय वचनों को न बोलना यह सत्य अणुव्रत हैं।

प्रश्न १. सम्यग्ज्ञान के पहले सम्यक्चारित्र नहीं हो सकता क्या ?
उत्तर - सम्यक्चारित्र सम्यग्ज्ञान के साथ होता है पूर्व में नहीं।

प्रश्न २. सम्यग्ज्ञान से पहले सम्यक् चारित्र नहीं हो सकता ?
उत्तर - सम्यग्ज्ञान के बिना हेयोपादेय का ज्ञान संभव नहीं है और हेयोपादेय के ज्ञान के बिना सम्यक्चारित्र का जीवन में आना संभव नहीं है।

प्रश्न ३. चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर - हेय वस्तु के त्याग पूर्वक अपने आत्म स्वरुप में आचरण करने को सम्यक् चारित्र कहते है।

प्रश्न ४. सम्यक् चारित्र के भेद है क्या ?
उत्तर - स्वरुप की अपेक्षा सम्यकचारित्र एक ही प्रकार का है, परन्तु पात्रो की अपेक्षा अर्थात श्रावक और मुनिराजों की अपेक्षा दो भेद किये है। परिणामों की अपेक्षा और भी अनेक भेद है।

प्रश्न ५. एक देश चारित्र किसे कहते है ?
उत्तर - आगमानुसार पांचों इन्द्रिय जन्य भोगोपभोगों का एवं पांचों पापों के सामान्य त्याग को एक देश चारित्र कहते है। इसका परिपालन श्रावक करते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से परिणामों में आंशिक वीतरागता ही एक देश चारित्र है।

प्रश्न ६. सकल चारित्र किसे कहते है ?
उत्तर - आगमानुसार पांचों इन्द्रियों के विषय और पांचों पापों का जिसमें परिपूर्ण त्याग होता है उसे सकल सम्यकचारित्र कहते है। इसका परिपालन संसार, शरीर, भागों से

विरक्त दिगम्बर मुनिराज ही कर पाते है। मुख्यत: आध्यात्मिक दृष्टि से अधिकांश रुपेण आत्म स्वरुप में तन्मयता ही सकल चारित्र है।

प्रश्न ७. अहिंसा किसे कहते है ?
उत्तर - त्रस जीवों का कष्ट नहीं पहुचाते हुए बिना प्रयोजन के स्थावर प्राणियों को भी नही सताना यह अहिंसा अणुव्रत हैं।

प्रश्न ८. त्रस हिंसा किसे कहते है ?
उत्तर - दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों की कष्ट पहुंचाना त्रस हिंसा है।

प्रश्न ९. स्थावर हिंसा किसे कहते है ?
उत्तर - पृथ्वी जलादि एकेन्द्रिय जीवों को कष्ट पहुंचाना स्थावर हिंसा हैं।

प्रश्न १०. सत्य अणुव्रत किसे कहते है ?
उत्तर - प्राणियों से प्रााण घातक कठार और निन्दनीय वचन नहीं बोलना अर्थात हितमित और प्रिय वचन बोलना, यह सत्य अणुव्रत कहलाता हैं।

प्रश्न ११. निन्द्य वचन किसे कहते है ?
उत्तर - विषय कषाय एवं छल कपट तथा वासना से युक्त संसार वर्धक वचनों को निन्द्य वचन कहते है।

शेष अणुव्रत और दिग्व्रत

जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज बनिता बिन सकल, नारि सों रहै विरत्ता।।

अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिश गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै।। १०।।

अन्वयार्थ - (जल मृतिका बिन) जल और मिटटी के बिना (और कछु अदत्त नाहिं गहै) और कोई भी पर वस्तु बिना दिये, बिना पुछे ग्रहण नहीं करते (निज बनिता बिन) स्व विवाहित धर्म पत्नी के सिवाय (सकल नारि सौ विरत्ता रहै) समस्त नारीयों से विरक्त रहते है। (अपनी शक्ति विचार) अपनी आवश्यकता के अनुसार (परिग्रह थोडो राखै) परिग्रह थोडा सा रख लेते है (दश दिश गमन प्रमाण ठान) दशों दिशाओं में आवागमन का प्रमाण करके (तसु सीम न नाखै)उस प्रमाण की सीमा का उल्लंघन नहीं करते।

भावार्थ - श्रावक की भूमिक में अणुव्रतों क अपना एक विशेष महत्व है। अणुव्रतों के अभाव में श्रावक असंयमी नाम पाता है। सप्त व्यसन सहित अष्ट मूल गुण रहित असंयमी की वृत्ति को आचार्यो ने पशुवत् वृत्ति कह कर शिष्टाचार और मोक्ष मार्ग में उन्हें कोई स्थान प्रदान नही किया है। मुनिराज संसार शरीर भोगों से परिपूर्ण विरक्त है इसिलिजए महाव्रतों का परिपालन करनें में सक्षम है। श्रावक के मन में मोक्ष प्राप्ति की भावना जब लहरा उठती है और इन्द्रिय कषायों से पूर्ण विरक्त नही ंहो पाता तब वह अणुव्रतियों की श्रृंखला में जुडा रहता है। अहिंसा और सत्य अणुव्रत के साथ अचौर्य अणव्रत की विवेचना करते हुए आयार्चो ने आगम में बताया है कि जल और मिटटी के अतिरिक्त बिना दिये या बिना पूंछे किसी भी प्रकार की वस्तुओं को ग्रहण नहीं करना यह अचौर्य अणव्रत है। स्वरुप आचरण की भावना के साथ अष्टमी

चतुर्दशी एवं विशेष पर्वों में स्व विवाहित धर्मपत्नी के अतिरिक्त समस्त नारियों से विमुख रहना या विरक्त रहतना यह ब्रम्हचर्य अणुव्रत है तथा अपनी आवश्यकता के अनुसार परिग्रह की सीमा बनाकर शेष परिग्रह का त्याग कर उससे दृष्टि मोड लेना परिग्रह परिमाण अणुव्रत है।

अणुव्रतों मुें गुणित रुप से बृध्दि करने वाले ब्रत गुणव्रत कहे गये है, जिनके तीन भेद है। (१) दिग्व्रत (२) देशव्रत (३) अनर्थदण्ड त्यागव्रत। दशें दिशाओं के गमनागमन का प्रमाण करके उसकी सीमा का उल्लघन नहीं करना यह प्रथम दिग्व्रत है।

प्रश्न १. बिना पूछे जल और मिटटी ग्रहण करने पर चोरीं का दोष नहीं लगता क्या ?
उत्तर - सार्वजनिक नही कुआ या जंगल खेत आदि में से जल और मिटटी ग्रहण करने पर श्रावक को चारी का दोष नहीं लगता।

प्रश्न २. किसी के मकान में जाकर बिना पूॅछे घडे में से पानी भरना चारी नहीं है क्या ?
उत्तर - किसी के घर में जाकर बिन पुंछे पानी और मिटटी ग्रहण करना चोरी हैं।

प्रश्न ३. ब्रम्हचर्य अणुव्रत किसे कहते है ?
उत्तर - विशेषत: पर्वो में पूर्ण वासनाओं का त्याग करना और स्व विवाहित धर्म पत्नी के अतिरिक्त सभी से विरक्त रहते हुऐ उन्हें माता बहिन के समान समझना यह ब्रम्हचर्य अणुब्रत है।

प्रश्न ४. परिग्रह परिमाण व्रत किसे कहते है ?
उत्तर - अपनी आवश्यकता से अधिक धन धान्यादि होने पर परिग्रह का त्याग करके सीमा बना लेना परिग्रह प्रमाण अणुव्रत है।

प्रश्न ५. गुणव्रत किसे कहते है ?
उत्तर - पंचाणुव्रतों में वृध्दि करने वाले व्रतों को गुणव्रत कहते है। ये तीन होते है, दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थ दण्ड व्रत।

प्रश्न ६. दिग्व्रत किसे कहते है ?
उत्तर - दशों दिशाओं की मर्यादा करके सीमा का उल्लंघन न करना दिग्व्रत हैं।

देश व्रत और अनर्थदण्ड

ताहु में फिर ग्राम, गली गृह बाग बाजारा।
गमनागमन प्रमान ठान, अन सकल निबारा।।
काहु की धन हानि, किसी जय हार न चिंतै।
देय न सो उपदेश, होय अघ वनज कृषी तै।। ११।।

अन्वयार्थ - (ताहू में) उस दिग्व्रत में भी (फिर ग्राम गली गृह बाग बाजार) गांव, गली, घर, बाग, बाजार आदि में (गमनागमन प्रमान ठान)गमन और आगमन का प्रमाण करके (अन सकल निबारा)शेष अन्य सभी का परित्याग कर देना चाहिये (काहू की धन हानि) किसी के धन की हानि (किसी जय हान न चिंतै) किसी के हारने या जीतने का चिन्तवन न करें (बनज कृषी तैं) व्यापार और खेति आदि से अनेकों प्रकार के (अघ होय)पाप होते है (सौ) इसलिए खेती, बनिज आदि का (उपदेश न देय) उपदेश नहीं देना चाहिये।

भावार्थ -अणुव्रती भव्य आत्माऐं अहिंसा, सत्य, अचौर्य , बम्हचर्य, परिग्रह परिमाण व्रत को सफल बनाने के लिये गुणव्रतों का पालन करते है इन व्रतों के परिपालन से घोडे से भी अधिक छलांग लगाने वाले मन रुपी घोडे को लगाम लग जाती हे अर्थात असीमित इच्छांये सिमामें बंध जाती है। अनावश्यक्य कार्या करणे की भावना आवश्यक्ता में निहीत हो जाती है। दिशा मर्यादाओं से उसके मन के विकल्प मर्यादित हो जाते है। दशों दिशाओं के अन्दर भी मैं असज अवपे गांव से बाहर नहीं जाऊँगा , बगीचे से बाहर नहीं निकलूँगा अमुक गली व बाजार से बाहर नहीं जाऊँगा, इस मंदिर में या एकान्त स्थान में बैठा रहूंगा ऐसी मर्यादा को देश व्रत कहते है। इससे मोनोवृत्ति इधर-उधर की भाग-दौड से बचकर अपने आप में समाहिहत हो जाती है। किसी की हार जीत का चिन्तवन, भूमि आदि का खोदना, असि, मसि, कृषि आदि का उपदेश, अप्रयोजनीय कार्यो का न करना अनर्थदण्ड से बचना है। इससे स्वाभाविक आत्म प्रयोजनीय कार्य प्रारम्भ हो जाते है।

प्रश्न १. दिशाओं की मर्यादा करने से क्या लाभ है ?
उत्तर - दशों दिशाओं की मर्यादा करने से अमर्यादित क्षेत्र सम्बन्धी पापों से बच जाते है।

प्रश्न २. देश व्रत से क्या लाभ है ?
उत्तर - देश व्रत में दिशाओं की मर्यादा को भी संकुचित कर दिया जाता है,जिससे मन के विकल्प मर्यादा के अन्दर समाहित हो जाते है।

प्रश्न ३. अनर्थ दण्ड के त्याग से क्या लाभ है ?
उत्तर - अनर्थ दण्ड का त्याग करने से अहिंसा व्रत पालन में वृध्दि होती है और अप्रयोजनीय कार्यो से विरक्ति होती हैं।

प्रश्न ४. किसी का धन समाप्त हो या हार हो ऐसा चिन्तवन करने से क्या हानि है ?
उत्तर - दूसरों की धन हानि या हार हो ऐसा चिन्तवन करने से उसकी हार या धन हानि हो या नाहो परन्तु अपने पाप कर्म का बंध निश्चित है।

प्रश्न ५. किसी की जीत चिन्तवन से क्या हानि है ?
उत्तर - किसी की जीत के भाव अपने मन में लाओगे तो किसी के हराने की भावना भी मन में निश्चित बनेगी और ये दोनों भवनायें राग-द्वेष के रुपान्तर है। अत: आत्मोत्थान में बाधक ही है।

अनर्थ दण्ड क भेद

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरण, नहिं दे यश लाधै।।
राग-द्वेष करतार, कथा कवहूं न सुनी जे।
औरहु अनरथ दंड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजे।। १२।।

अन्वयार्थ - (कर प्रमाद) प्रमाद कर (भूमी जल पावक वृक्ष न विरोधे) पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक और वनस्पति कायिक जीवों का घात नहीं करना चाहिये (असि धनु हल) तलवार, धनुष, हल आदि (हिंसोपकरण) जो हिंसा के उपकरण है (यश लाधें नहिं दे) यश की प्राप्ति के ल्लिए किसी को नहीं देना चाहिये (राग - द्वेष करतार कथा) राग-द्वेष को उत्पन्न न करने वाली कथा (कबहु न सुनी जे) कभी भी नहीं सुनना चाहिए (औरहु अनरथ दंड आपके हेतु) और भी अनेकों प्रकारके अनर्थ दण्ड जो पापों के कारण है (तिन्हें न कीजे) उन की कभी नहीं करना चाहियें।

भावार्थ - प्रमाद के वशीभूत होकर अप्रयोजनीय अनेकों कर्मो को बिना बिचारे ही सहज भाव से अज्ञानी करता चला जा रहा है। कभी बैठा-बैठा लकडी तोडता रहता है, तो कभ‍ लकडी ये जमीन खोदता रहता है , कभी - कभी चलता चलता फूल पत्ती को तोडता जाता है, तो कभी व्यर्थ में ही पानी की उछालता रहता है। क्या कर रहे हो ? पूंछने पर कुछ नहीं उत्तर के साथ सावधान होकर बैठ जाता है इससे लगता है कि प्रमाद अवस्था अज्ञानता की सहेली है, अनर्थो का द्वारा है, पापों की खानि है। ज्ञानी आत्माओं को प्रमाद से परिपूर्ण होने वाला अनर्थ दण्ड कभी भी नहीं करना चाहिएें

कभी ख्याति लाभ की भावना से बन्दुक, तलवार, हल, चाकू, छुरी आदि उपकरण दूसरों की देकर पप का भागी बन जाताहै। कभी कभी राग,द्वेष को बढाने वाली स्त्री आदि चार विकथाओं में रस लेकर पाप का बन्ध करता चला जाता है। इस प्रकार अनन्तो अप्रयोजनीय कार्य करता हुआ पापों का संचय करता रहता है। आचार्यो ने भव्य जीवों को संबोधन करते हुए कहा है कि अनर्थ दण्ड पाप से सर्वथा विमुक्त रहना चाहिये, तभी अप्रमत्त दशा के माध्यम से अवरण्ीय अनन्त गुणों की उपलब्धि कर पायेंगे अपने आप में।

प्रश्न १. प्रमाद किसे कहते है और वे कितने है ?
उत्तर - अच्छे कार्यो में अनादर का होना प्रमाद है। ४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रिय, निद्रा और स्नेह इस प्रकार प्रमाद के १५ भेद है।

प्रश्न २. अनर्थ दण्ड किसे कहते है ?
उत्तर - अप्रयोजनीय पाप वर्धक कार्यो को अनर्थ दण्ड कहते है।

प्रश्न ३. प्रमाद से क्या हानि है ?
उत्तर - प्रमाद के साथ किसी भी जीव का घात होने पर हिंसा का दोष लगता है। अत: प्रमाद ही जीव को हिंसक या पापी बनाता है।

प्रश्न ४. जल, भूमि आदि में भी जीव है क्या ?
उत्तर - पृथ्वी , जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये सभी एक इन्द्रिय जीव है, ऐसा आचार्यो ने कहा है।

प्रश्न ५. भौतिक विज्ञान के अनुसार भी स्थावरों में जीव है क्या ?

उत्तर - वर्तमान में वैज्ञानिकों ने भी अनेकों प्रयोगों द्वारा यह सिध्द कर दिया है कि वनस्पती, जल आदि सभी स्थावरों में एक नहीं अगणित जीवों का अस्तित्व है।

प्रश्न ६. अपने मित्र या पडोसियों को हिंसा के उपकरण देने में क्या दोष है ?
उत्तर - आपके पास से हिंसा के उपकरण ले जाकर आपके मित्र या पडोसी उनसे जो हिंसा करेंगे उस पाप का बहु भाग आपको भी मिलेगा। अत: हिंसा के उपकरण किसी को मांगने पर भी नहीं देना चाहिये।

प्रश्न ७. विकथा क्यों नहीं सुनना चाहिये ?
उत्तर - विकथायें सुनने में या करने में समय व्यर्थ चला जाता है और राग-द्वेष की वृध्दि होती है, दुर्गति का बंध होता है इसलिए विकथाओं में समय नहीं गंवाना चाहिये।

प्रश्न ८. पाप बंध किन-किन क्रियाओं से होता है ?
उत्तर - पर निन्दा, चुली किसी के पतन की भावना, किसी को धोखा देने की भावना, किसी के अशुभ कर्म को उदय में दु:खी देखकर प्रसन्न होना आदि अनेकों कुत्सित भावनाओ से पाप कर्म का बंध हो जाता है।

शिक्षा व्रतों का स्वरुप

धरउर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परब चतुष्टय महिं, पाप तजि प्रोषध धरियें।।
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारे।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारे।। १३।।

अन्वयार्थ - (धर उर समता भाव) अपने ह्रदय में समता भाव धारण करके (सदा सामायिक करिये) सदा सामायिक करना चाहिये (परब चतुष्टय माहिं) महिने के अन्दर आने वाली दोनों अष्टमी एवं दोनों चतुर्दशी के दिन (पाप ताज)पाप कार्यो का त्याग करके (प्रोषध धरिये) प्रोषधोपवास करना चाहिये(भोग और उपभोग) भोग और उपभोग की वस्तुओं की (नियम कर) मर्यादा बनाकर (ममत निवारे)शेष वस्तुओं से ममत्व छोड देना चाहिए (मुनि को भोजन देय) मुनिराज को आहार देकर(फेर निज करहिं अहारें) उसके बाद स्वयं आहार करना चाहिये।

भावार्थ - मोह, ममता, राग-द्वेष की वृध्दि आदि दुर्भावनाओं में अनादि काल से समय व्यतीत होता जा रहा है। फलत: क्षण भर के लिये भी शान्ति की लहर नहीं मिल पा रही है। चारों गतियों में दर-दर की ठोकर चिरकाल से खाते चले आ रहे है। करुणानिधि हमारे पूज्य पाद आचार्यो ने आत्म शान्ति का उपाय चार शिक्षा व्रतों की

विवेचना करते हुये बताया है कि अपने ह्रदय में समता भाव को धारण करके सदैव अर्थात त्रिकाल सामायिक करना चाहिये। आत्म स्वभाव में विलीन होने के लिये अष्टमी, चतुर्दशी पर्वो में सभा आरम्भ और परिग्रह रुप पाप कार्यो को छोडकर प्रोषधोपवास करना चाहिये। भोगोपभोग की वस्तुओं की आवश्यकतानुसार सीमा बनाकर शेष सभी का विमोचन कर देना चाहिये और प्रात: देप पूजा के अनघ्न्तर शुध्द आहार बनाकर नवधा भक्ति पूर्वक मुनिराज को आहार कराकर तदनन्तर स्वयं आहार करना, यह चारों शिक्षा व्रत है। इनसे निरन्तर मोक्ष मार्ग पर बढने की शिक्षा प्राप्त होती है।

प्रश्न १. शिक्षा व्रत किसे कहते है ?
उत्तर - अणुव्रत एवं गुणव्रतों के साथ जिनसे महाव्रत धारण करने की प्रेरणा जाग्रत हो उन्हे शिक्षाव्रत कहते है।

प्रश्न २. शिक्षा व्रत कितने होते है ?
उत्तर - शिक्षाव्रत चार होते है इ

- सामायिक, २. प्रोषधेपवास, ३. भोगोपभोग परिमाण, ४. अतिथि संविभाग।

प्रश्न ३. सामायिक किसे कहते है ?
उत्तर - आधि, व्याधि, उपाधियों से परे होकर आत्म स्वरुप में लीन होने को सामायिक कहते है।

प्रश्न ४. प्रोषधोपवास किसे कहते है ?
उत्तर - विषय कषाय एवं समस्त लौकिक कार्यो से विराम लेकर चारों प्रकार के आहार का संकल्प पूर्वक परित्याग करना प्रोषधोपवास कहलाता है।

प्रश्न ५. प्रोषधोपवास कितने प्रकार का है ?
उत्तर - उत्तम, मध्यम, जघन्य के भेद से प्रोषधोपवास तीन प्रकार का है।

प्रश्न ६. उत्कृष्ट प्रोषधोपवास किसे कहते है ?
उत्तर - अष्टमी और चतुर्दशी के दिन उपवास सप्तमी और नवमीं एवं त्रयोदशी तथा पूर्णिमा के दिन एकासन करने को उत्कृष्ट प्रोषधोपवास कहते है।

प्रश्न ७. मध्यम प्रोषधोपवास किसे कहते है ?
उत्तर - अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वो में निर्जला उपवान करने को मध्यम प्रोषोधोपवास कहते है।

प्रश्न ८. जघन्य प्रोषधोपवास किसे कहते है ?
उत्तर - पर्वो के दिनों मे एकासना करने को या पूर्वापर तीनों दिनीं में एकासन करने को जघन्य प्रोषधोपवास कहते है।

प्रश्न ९. भोगोपभोग परिमाण व्रत किसे कहते है ?
उत्तर - भोग और उपभोग की वस्तुओं में आवश्यकतानुसार मर्यादा करके शेष वस्तुओं का परित्याग कर देना भोगोपभोग परिमाण व्रत है।

प्रश्न १०. भोग किसे कहते है ?
उत्तर - जो वस्तु एक बार प्रयोग में आती है उसे भोग कहते है जैसे-भोजन आदि।

प्रश्न ११. उपभोग किसे कहते है ?
उत्तर - जो वस्तु पुन: पुन: उपभोग में आती है उसे उपभोग कहते है, जैसे- वस्त्रादि।

प्रश्न १२. अतिथि संविभाग शिक्षा ब्रत किसे कहते है ?

उत्तर - मुनिराज,ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका, त्यागी ब्रतियों का यथावत भक्त पूर्वक आहारादि देना यह अतिथी संविभाग शिक्षाव्रत है।

निरतिचार श्रावक व्रत और समाधिमरण का फल

बारह व्रत के अतिचार, पन-पन न लगावे।
मरण समय सन्यास धारि, तसु दोष नशावे।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावे।
तहँ तैं चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावे।। १४।।

अन्वयार्थ - (बारह व्रत के) बारह व्रत के(पन पन अतिचार) पांच पांच अतिचार है, उन्हें (न नलगावे) नहीं लगाना चाहिए, अर्थात अतिचारों से रहित व्रतों का पालन करना चाहिए (मरण समय) मरण के समय (सन्यास धार) समाधि लेकर सभ‍ प्रकार के आरम्भ परिग्रह का त्याग करके (तसु दोष नशावे) उस समाधि मरण ें लगने वाले जीवप मरण क्षोभ आदि दोषों को समाप्त कर देता है (यों श्रावक व्रत पाल) इस प्रकार श्रावक के व्रत पालकर (स्वर्ग सोलम उपजावे) सोजहहवे स्वर्ग में उत्पन्न होता हे (तॅह तै चय) वहॉ से आकर(नर जन्म पाय) मनुष्य जन्म को प्राप्त करके (मुनि ह्वै) दिगम्बर मुनि बन कर (शिव जावे) मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेते है।

भावार्थ - अविरत अवस्था में अभक्ष्य का सेवन करने वाले बहुसंख्यक अज्ञानी प्राणी उसी में आनन्द मानते चले आ रहे है। कुछ भव्यात्मा अणुव्रतों का पालन तो करते है, परन्तु अतिचारों से नहीं बच पाते। हमारे पूर्वाचार्यो ने कहा है कि मोक्ष के प्रेमी अणुब्रति सभी भव्यात्मा इन बारह व्रतों में लगने वाले पांच पांच अतिचारों से सर्वथा मुक्त रहे और समाधि मरण के समय सभी आरम्भ परिग्रह एवं जन्म-मरण आदि

की चिन्ताओं को छोडकर निर्दोष समाधि करके सोजहवे स्वर्ग में उत्पन्न हो २२ सागर पर्यन्त स्वर्गो के सुख भोगकर मानव पर्याय में आकर दिगम्बर मुंनि बनकर भेद विज्ञान के बल से क्षपक श्रेण्ी मांडकर केवलज्ञान की प्राप्ति करते हुए मोक्ष सुख में विलीन हो जाते है।

प्रश्न १. व्रत किसे कहते है ?
उत्तर - १. विषय कषायों से विरक्ति ही व्रत है, या इन्द्रिय लम्पटता के परित्याग को व्रत कहते है।

- संसार शरीर भोगों से विरक्ति एवं स्वरुप में अनुरक्ति को व्रत कहते है।
- देव शास्त्र गुरु की साक्षी पूर्वक मोक्षमार्ग के अनुरुप ग्रहण किये हुए नियम को भी व्रत कहते है।

प्रश्न २. व्रत कितने होते है ?
उत्तर - व्रत बारह होते है। ५ अणुब्रत ३. गुणव्रत ४. शिक्षाव्रत।

प्रश्न ३. अतिचार किसे कहते है ?
उत्तर - जो व्रतों को मुलत: घात न कर सके परन्तु सदोष बना दे उसे अतिचार कहते है।

प्रश्न ४. क्या व्रत में अविचार लगाना चाहिए ?
उत्तर - व्रतों में किञ्चित मात्र भी अचिार नहीं लगने देना चाहिये। कदाचित प्रमादवश लग भी जाये तो गुरुसे प्रायश्यित लेकर निरतिचार व्रतों का परिपालन करना चाहिये।

प्रश्न ५. अतिचार कितने होते है ?
उत्तर - प्रत्येक व्रत के पांच-पांच अतिचार होते है।

प्रश्न ६. सन्यास किसे कहते है ?
उत्तर - संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर रत्नत्रय पूर्वक समाधि मरण को तैयारी को सन्यास कहते है।

प्रश्न ७. श्रावक किसे कहते है ?
उत्तर - श्रध्दावान, विवेकवान एवं क्रियावान सम्यग्दृष्टि भव्य आत्मा को श्रावक कहते है।

प्रश्न ८. बारह व्रतों का पालन करने वाला कहॉ तक जाता है ?
उत्तर - बारह व्रतो का पालन करने वाला सोलहवे स्वर्ग तक जाता है।

प्रश्न ९. बारह व्रतो का पालन करने का फल सोलहवे स्वर्ग पर्यन्त ही है क्या ?
उत्तर - बारह ब्रतों का पालन करके सोलहवें स्वर्ग तक जाने वाला भव्यात्मा देव पर्याय के अनन्तर मनुष्य भव में दिगम्बर मुनि बन मोक्ष फल को भी प्राप्त करता है। अत: अणुब्रत परिपाल न का फल परम्परा से मोक्ष सुख की प्राप्ति भी है।

प्रश्न १०. श्रावक अवस्था में भी समाधिमरण किया जा सकता है क्या ?
उत्तर - उत्कृष्ट रुप से समाधि परम दिगम्बर मुनिराज ही करते है, परन्तु सामान्यतया मोह मिथ्यात्व का वमन करने वाला श्रावक भी साधना पूर्वक समाधिमरण कर सकता है।

चतुर्थ ढाल का सारांश

श्री पण्डित दौलतराम जी ने इस ढाल में सम्यग्दृष्टि जीव को सम्यग्ज्ञान का उपयोग चारित्र की दृढता में लगाने की प्रेरणा देते हुए सम्यग्ज्ञान के भैद गरिमा आदि बताकर देश चारित्र रुप श्रावक धर्म का प्रतिपादन किया है। श्रावक को अपनी दिनचर्या सदैव समता सिहित निर्लोभ रुप से परिपूर्ण बारह ब्रतों का पालन करते हुये आदर्श जीवन बनाना चाहिये, ताकि मरणान्तिक दशा में निर्ग्रन्थ धर्म स्वीकार कर सम्यक् मोक्ष मार्ग बन सके। मोक्ष की जड मनुष्य पर्याय की सार्थकता सम्यग्दर्शन पूर्वक आत्म ज्ञान के साथ सम्यक् चारित्र ही है, जो एक देश श्रावक दशा में बारह ब्रताचारण रुप होता है तथा परिपूर्ण् मुनिदशा में शुध्दोपयोग के साथ सकल संयम रुप होता है। देशब्रती श्रावक सोलहवे स्वर्ग तक जन्म पाता है और वहॉ से आयु क्षय कर पुन: मनुष्य पर्याय पाकर निर्ग्रन्थपना स्वीकार कर निर्वाण पाता है।

---

* पांचवी ढाल *

द्वादश भावन भायकर , भव्य गये भव पार।
भाव भव्य बर्णन करुं, मिले मुक्ति का प्यार।।

सौभाग्यशाली मुनिराज का कर्त्तव्य

मुनि सकलव्रती बडभागी, भव - भोगनतै बैरागी।
बैराग्य उपावन माई, चिन्तै अनुप्रेक्षा भाई।। १ ।।

अन्वयार्थ - (मुनि सकल ब्रती बडभागी) मुनिराज महाव्रती परम सौभाग्यशाली है (भव भोगनतै वैरागी) जो संसार के सभी भोगों से विरक्त रहते है (वैराग्य उपावन माई) वैराग्य (समता रुपी पूत्र) को उत्पन्न करने के लिए (माई) माता के समान है (भाई) हे भव्य प्राणियों (अनुप्रेक्षा चिन्तैं)(इस प्रकार की द्वादश) भावना का मुनिराज चिन्तवन करते है।

भावार्थ - महाव्रतों की महिमा अखिल विश्‍व में हर प्राणी के मन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किये हुये है। महाव्रतों को अंगीकार करना सामान्य पुरुष के हाथ की बात नहीं है। महाव्रतों को धारण और पालन करने वाले सौभाग्य शाली महापुरुष ही होते है।
जैसे- सिंहनी का दुध स्वर्ण पात्र में ही रुकते है, इसी प्रकार महाव्रतों को सौभाग्यशाली पुरुषार्थी महापुरुष ही धारण कर पाते है। महाव्रती मुनिराज संसार शरीर भोगों से राग-द्वेष, काम, क्रोध्, आदि कषायों से मोह, लोभ, क्षोभ आदि सभी कुविकारों से सर्वथा विरक्त रहते है तथा समता के साथ वैराग्य उत्पन्न करने वाली मातृत्व भाव में द्रवित बारह भावनाओं का निरन्तर चिन्तवन करते रहते है।

.१५६.

प्रश्‍न १. मुनिराज कैसे होते है ?
उत्तर - मुनिराज संसार, शरीर एवं भोगों सं पूर्णत: विरक्त रहते है।

प्रश्‍न २. मुनिराजों को सकल व्रती क्यों कहा जाता है ?
उत्तर - हिंसादि पापों का सर्वथा त्याग होने से एवं संसार शरीर भागों से परिपुर्ण विरक्त होने से मुनिराज सकलब्रती कहे जाते है।

प्रश्‍न ३. मुनिराजों कों बडभागी क्यों कहा है ?
उत्तर - सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रुपी रत्नों की प्राप्ति सामान्य लोगों को नहीं होती, निकट द्रव्य विशेष पुण्यशाली आत्माओं को ही होती है। अत: रत्नत्रय निधि के कारण मुनिराजों को विशेष भाग्यशाली कहा है।

प्रश्‍न ४. अनुप्रक्षा किसे कहते है और वे कितनी है ?
उत्तर - संसार, शरीर, भोगों से विरक्त आत्म स्वरुप के पुन: पुन: चिन्तवन को अनुप्रेक्षा कहते है।
उनके द्वादश नाम निम्न प्रकार है ड़

- अनित्य (२) अशरण (३) संसार (४) एकत्व (५) अन्यत्व (६) अशुचि (७) आस्त्रव (८) संवर (९) निर्जरा (१०) लोक (११) बोधिदुर्लभ (१२)धर्म।

द्वादश अनुप्रक्षाओं का फल

इनचिन्तत सम सुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागे।
जब ही जिय आतम जाने, तब ही जिय शिव सुख ठाने।। २।।

.१५७.

अन्वयार्थ - (इन चिन्तत) इन द्वादश अनुप्रेक्षओं के चिन्तवन से(सम सुख जागे) समता रुपी सुख जाग्रत हो जाता है (जिमि) जिस प्रकार (पवन के लागे ज्वलन) हवा के लगने से अग्नि भडक उठती है (जब ही जिय) ंिजस समय यह जीव(आतम जाने) आत्मा को जानता है (तब ही जिय) उसी समय यह जीव (शिव सुख ठाने) मोक्ष सुख की प्राप्ति का स्थान प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ - बारह भावनाओं की महिमा कौन नहीं जागता। एक-एक भावना के चिन्तवन से अनादि काल से संसार दल-दल में फॅसा हुआ आत्मा सहज में ऊपर की और उठता चला आता है। संसार की स्थिती मन पटल पर हेय रुप में अंकित हो जाती है। संवर, निर्जरा, बोधिदुर्लभ और धर्म भज्ञवनायें मोह क्षोभ को परास्त कर सच्चे समता सुख को जगाने में उस प्रकार निमित्त बन जाती है जिस प्रकार तीव्र हवा के चलने पर अग्नि भडक उठती है। जिस समय यह भव्य प्राणी अपने शुध्दात्म स्वरुप को जानता है, उसी समय यह मोक्ष सुख प्राप्ति के लिए कटिबध्द हो जाता है। बारह भावनाओं के चिन्तवन से गुणदोषों की पहिचान क्षण -भर में हो जाती है। सारे के सारे दोसों को मुनिराज तिलात्र्जलि देकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि गुणो में हमेशा के ंलिये लीन हो जाते है।

प्रश्न १. भावना किसे कहते है ?
उत्तर - बार-बार संसार, शरीर अर्थात भव समुद्र से पार होने का चिन्तवन करने को भावना कहते है।

प्रश्न २. बारह भावनाओं क चिन्तवन से क्या लाभ है ?
उत्तर - बारह भावनाओं के चिन्तवन से समता सुख की उपलब्धि होती है, वेश्राग्य में वृध्दि होती है और रत्नत्रय की उपलब्धि के साथ परम्परा से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ३. बारह भावनाओं का चिन्तवन श्रावक नहीं कर सकते क्या ?
उत्तर - बारह भावनाओं का चिन्तवन श्रावक अवस्था में भी उपयोगी है, परन्तु उने चिन्तवन का पूर्ण फल मुनि अवस्था में ही प्राप्त होता है।

प्रश्न ४. सम सुख किसे कहते है ?
उत्तर - मोह एवं क्षोभ के अभाव में उत्पन्न आत्मीय आनन्द को समसुख कहते है।

प्रश्न ५. शिव सुख की प्राप्ति कब होगी ?
उत्तर - नय एवं प्रमाण से यथार्थ आत्म स्वरुप को जान लेने पर ही शिव सुख की प्राप्ति होगी।

अनित्य

जीवन गृह गोधन नारी, ह्दय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय -भोग छिन थाई, सुर धनु चपला चपलाई।। ३।।

अन्वयार्थ - (जीवन गृह) जवानी एवं घर मकान(गोधन नारि) गाय, रुपया, पैसा तथा स्त्री (ह्य गय) घोडा हाथी (अज्ञाकारी जन) नौकर, चाकर एवं मित्र कुटुम्बीजन (इन्द्रिय भोग) पांचो इन्द्रियों के विषय भोग (सुर धनु चपला चपलाई) इन्द्र धनुष एवं बिजली चपलता के समान(छिन थाई) क्षण मात्र स्थिर रहने वाले है।

भावार्थ - सांसारिक वस्तुओं में कूछ भी नित्य नहीं है। जो वस्तु अपनी प्रतीत होती है वही क्षण मात्र में पराई या विनाश को प्राप्त हो जाती है। दमकती हुई यौवन अवस्था, महुल, मकान, हाथी, घोडा, गाय, भैंस, धन, वैभव, स्त्री आदि कुटूंम्बी जन, नौकर चाकर, मित्र जन और पांचों इन्द्रियों के भोग यह सभ‌‌‌‍‍‍‍‍ इन्द्र धनुष या बिजली की चपलता के समान क्षण मात्र में विलय को प्राप्त हो जाने वाले है। मनुष्य अनित्यता में भी नित्यता खोजता है इसलिये शान्ति नहीं मिल पा रही है। भव्यात्माओं का कर्तव्य है कि संसार में अनित्यता का चिन्तवन कर शाश्वत रहने वाले निजात्म स्वरुप को प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

प्रश्न १. अनित्य भावना किसे कहते है ?
उत्तर - संसार में कोई पदार्थ नित्य नहीं है, इस प्रकार के चिन्तवन को अनित्य भावना कहते है।

प्रश्न २. क्या संसार में कुछ भी नित्य नहीं है ?
उत्तर - स्त्री, पुत्र,मित्र,धन, यौवन आदि एवं इन्द्रियों के विषय भोग आदि कुछ भी नित्य नहीं है। देखते-देखते सभी विनष्ट हो जातें है, मात्र आत्म स्वरुप ही नित्य है।

प्रश्न ३. आत्मा नित्य कैसे है ?
उत्तर - आत्मा जन्म-मरण से रहित है और गुण पर्यायों से सहित है। शुध्द द्रव्यार्थिक नय से, शाश्वत स्वभाव से आत्मा नित्य रहता है।

.१६०.

प्रश्न ४. क्या ज्ञानादि नित्य नहीं है ?
उत्तर - मतिज्ञान श्रुतज्ञान आदि प्रारम्भ के चार (ज्ञान) नित्य नहीं है, मात्र केवलज्ञान नित्य है।

प्रश्न ५. धन सम्पत्ति कुटुम्बी जनों को नित्य मानना भूल है क्या ?
उत्तर - धन, वैभव, कुटुम्बीजन सब इन्द्र धनुष के समान क्षण मात्र में विलय को प्राप्त हो जाने वाले है। अत: शरीर, धन, परिजन आदि को नित्य मानना भूल है।

प्रश्न ६. इन्द्रिय भोग नित्य है क्या ?
उत्तर - इन्द्रिय भोग नित्य नहीं है, इन्द्र धनुष के समान क्षण भंगुर दु:खद ही है।

अशरण

सुर असुर खगादिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दलेते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई।। ४।।

अन्वयार्थ - (सुर असुर खगादपि जेते) इन्द्र, नरेन्द्र और खगेन्द्र आदि जो-जो है (ते) उन सबको(हरि ज्यों मृग) सिंह जिस प्रकार मृग को नष्ट कर देता है (काल दले) उसी प्रकार इन्द्र आदि को काल नष्ट कर देता है (मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई) चिन्तामणि आदि मणि, रक्षा करने वाले मन्त्र टोटके वगैरह अनैकों प्रकार के है(परन्तु)(मरते कोई बचावे न) मरते समय जीव को कोई बचाने वाला नहीं है।

भावार्थ - जीवन में किसी न किसी की शरण हर प्राणी लेता है। रोगी वैद्य की शरण लेता है, आपत्ति काल में मित्र और परिजनों की शरण लेता है, वचपन में माता

.१६१.

पिता की एवं जवानी में धन और विषय कषायों की शरण, बुढापे में बहू-बेटे और लाठी की शरण परन्तु वास्तविकता यह है कि कोई किसी के ल्रिये शरण नहीं है। आयु कर्म क्षीण होने पर बडे-बडे डाक्टर एवं विशेष औषधियॉ भी किसी को बचाने में सक्षम नहीं हो पातीं। मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष आदि सभी विद्यायें मरण समय विफल हो जाती है। अत: सिवाय सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और अपने आत्म गुणों सिवाय के विश्व में कोई शरण नहीं है।

प्रश्न १. अशरण भावना किसे कहते है ?
उत्तर - संसार में वास्तव में कोई किसी के लिये शरण नहीं है इस प्रकार का चिन्तवन करना अशरण भावना है।

प्रश्न २. क्या मन्त्र, तन्त्र औषधि आदि संकट में सहायक नहीं है ?
उत्तर - पुण्य कर्म के उदय में मन्त्र,तन्त्र, औषधि आदि सभी सहायक बन सकते है, पाप कर्म के उदय में या आयु कर्म समाप्त होने पर यह सभी विफल हो जाते है।

प्रश्न ३. क्या इन्द्र आदि देवों को काल समाप्त कर देता है ?
उत्तर - जिस प्रकार सिंह, हिरण आदि जानवरों को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार काल रुपी सिंह इन्द्र आदि सभी प्राणियों को आयु कर्म के क्षीण होने पर समाप्त कर देता है।

प्रश्न ४. मन्त्र किसे कहते है ?
उत्तर - जिसके द्वारा मनचाहें कार्यो की सिध्दी की जाय या आत्मा का आदेश- निजानुभव जाना जाय अथवा परम पद में स्थित पंचपरमेंष्टियों का सत्कार किया जाय या महत्व पूणा रहस्यमय शब्दात्मक वाक्यों को मन्त्र कहते है।

प्रश्न ५. तन्त्र किसे कहते है ?
उत्तर - मन्त्र और यन्त्रों को भोज पत्र पर लिखकर शरीर आदि पर धारण करन या वृक्ष विशेष को विशेष समय में आमन्त्रण देकर तोडकर लावे और फिर उसकी शुध्दि करकें अनेंकों इ्ष्ट कार्यो की सफलता के लिये प्रयोग करना इसी को तन्त्र कहते है।

संसार

चहुँ गति दु:ख जीव भरै है, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नांहि लगारा।। ५।।

अन्वयार्थ - (जीव चहुँगति) यह जीव चारों गतियों में (दु:ख भरै हैं) दु:ख प्राप्त कर रहा है (और) (पंच परिवर्तन करै है) द्रव्य,क्षेत्र,काल, भव भाव इस प्रकार पंच परावर्तन कर रहा है (सब विधि संसार असारा)सभी प्रकार से संसार असार है(यामें)संसार में (लगारा)लेस मात्र भी(सुख नहिं)सुख नहीं है।

भावार्थ - मनुष्य तिर्यत्र्च देव और नरक इन चारों गतियों की चौरासी लाख योनियों में द्रव्य, क्षेत्र, काल भव, भाव इस प्रकार के पांचों परावर्तनों को करता हुआ प्रतिक्षण दु:ख सागर में डूबा रहता है। संसार में सर्वत्र दृष्टि उठा करके देखने पर कही भी सुख नजर नहीं आता। कोई शरीर से दुखी है, कोई पैसे के अभाव में, कोई पुत्र के अभाव में , कोई कुपुत्रों के सदभाव में, कोई पत्नी के वियोग में तडफ रहा है, तो कोई कुल्टा पत्नी के संयोग में पश्चाताप कर रहा है। कोई पाप कर्म के उदय से दर

दर भटक रहा है, कोई कषायों के कारण बैर विरोध रुपी ज्वा ला में जल रहा हे। कोई छल कपट, ईर्ष्या, एक दुसरे की नीचा दिखने की भावना से बैचेन है तो कोई मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र के कारण संसार सागर में गोता खा रहा है। अत: संसार सभी प्रकार से केले स्तम्भवत असार है। ज्ञानी भव्य आत्मा ऐसे संसार स्वरुप को समझकर रत्नत्रय रुपी नौका में बैठकर मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर हो जाते है।

प्रश्न १. संसार भावना किसे कहते है ?
उत्तर - पंच परावर्तन रुप भ्रमण एवं लोक में होने वाले जन्म-मरण आदि दु:ख स्वरुप संसार का पुन: पुन: चिन्तवन करते हुऐ संसार समुद्र से तिरने की भावना संसार भावना है।

प्रश्न २. संसार में सर्वत्र दु:ख ही दु:ख है क्या ?
उत्तर - रत्नत्रय के अभाव से संसार में सर्वत्र दु:ख ही दु:ख है।

प्रश्न ३. क्या रत्नत्रय के साथ ही संसार में सुख है ?
उत्तर - रत्नत्रय से विभूषित आत्मा संसार में रहता है, परन्तु उसके अन्दर संसार नहीं है। वह जल में नाववत संसार में रहता है इसीलिये सुखी है।

प्रश्न ४. परावर्तन किसे कहते है ?

उत्तर - ज ीव क्रम से द्रव्य, क्षेत्रादि रुप से जो चारों गतियों में परिणमन करता है अर्थात जन्म-मरण करता है उसे ही परावर्तन कहते है।

.१६४.

प्रश्न ५. परावर्तन कितने है ?
उत्तर - परावर्तन पांच है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव।

प्रश्न ६. द्रव्य परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - जी व द्वारा लोक व्याप्त सुम्पूर्ण पुद्‌गल परमाणुओं को क्रमश: ग्रहण करने को द्रव्य परिवर्तन कहते है।

प्रश्न ७. क्षेत्र परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - सुमेरु पर्वत के नीचे स्तनाकार आठ प्रदेशों को छोडकर सम्पुर्ण आकाश के प्रदेशों पर क्रमश: अनन्त बार जन्म-मरण करने को क्षेत्र परावर्तन कहते है।

प्रश्न ८. काल परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - उत्सर्पिणी आसर्पिणी काल के प्रत्येक समय में क्रमश: जीव के जन्म मरण करने को काल परावर्तन कहते है।

प्रश्न ९. भव परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - जीव के द्वारा संसार की समस्त पर्यायों क्रमश: परिणमन करने को भव परावर्तन कहते है।

प्रश्न १०. भाव परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - जीव द्वारा मिथ्यात्व, पुण्य-पाप आदि रुप प्रत्येक विभाव परिणाम के परिणमन को भाव परावर्तन कहते है।

.१६५.

एकत्व

शुभ अशुभ करम फल जेते भोगे जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के है भीरी।। ६।।

अन्वयार्थ - (शुभ-अशुभ कर्म जेते फल) शुभ और अशुभ कर्मो के जितने फल है(तेते) वह सभी (एक ही जिय) अकेले जीव ही(भोगे)भोगता है(संसार में) (सब स्वारथ के भीरी है) सभी प्राणी मतलव के साथी है (सुत दारा सीरी होय न)पुत्र स्त्री पाप कर्म के उदय में या मतलव निकल जाने के बाद बात नहीं पुँछते है।

भावार्थ - संसार का हर प्राणी निरन्तर शुभ या अशुभ कर्मौ का आस्त्रव -बन्ध , मन वचन काय की कुटिलता, मिथ्यात्व एव कषाय के कारण करता रहता है। शुभ और अशुभ रुप इन सभी प्रकार के कर्मो का फल जीव स्वयं भोगता है। पुण्य कर्म के उदय में, स्त्री, पुत्र (कुटुम्बी जन) और मित्र सभी प्यार करते है। पाप कर्म के उदय में सभी विमुख हो जाते है, द्वेष करने लगते है, कोई किसी का साथ नहीं देता। खोटे कर्मो का फल जिस समय जीव को भोगना पडता है उस समय कितने संक्तिष्ट परिणाम होते है, जिन्हें रोकने में कोई सक्षम नहीं है। मुलत: सारांश यह है कि यह जीव अकेला ही है, अपने कर्मो का फल अकेला ही भोगता है। न कोई साथ आया है, न कोई आथ जायेगा। इस बात का अपने मन में सुदृढ निर्णय करके एकत्व विभक्त शुध्दात्म स्वरुप की प्राप्ति की भावना ही एकत्व भावना है।

.१६६.